VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/ 57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2018 TO 31.12.2020)

६६,१२ मार्च २०१८

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-244750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री कृष्ण अग्रवाल 'मंगल'	होली का रंग	कविता	२
डॉ. देशराज शर्मा	वैदिक वाङ्मय में कृषिकर्म	लेख	३
डॉ. कर्णसिंह 'वाग्योगी'	मामनुस्मर, युध्य च	लेख	६
प्रो. (डॉ.) घनश्याम उनियाल	मानव-जीवन में देवताओं का महत्त्व	लेख	८
शास्त्री दीनानाथ गौतम	आज के सन्दर्भ में वैदिक सूक्तियों की व्याख्या	लेख	१२
डॉ. कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'	गीत		१६
डॉ. केवलकृष्ण पाठक	नवयुग का निर्माण		१६
डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर'	महाभारत की ऐतिहासिकता	लेख	१७
डॉ. सुधांशु कुमार षडङ्गी	वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमिविचार	लेख	२२
डॉ. रीना तलवाड़	श्री गुरु गोबिन्दसिंह - एक दिव्य महापुरुष	लेख	२५
डॉ० अर्चना रानी वालिया	सब प्रकार से सुन्दर ही सुन्दर-सुन्दरकाण्ड	लेख	२८
सुश्री रितु गुप्ता	हिन्दी-पत्रकारिता के विकास में हरियाणा की पत्रकारिता का योगदान	लेख	३२
श्री बाबू लाल प्रेम	भारत माता	कविता	३४
डॉ. राजेन्द्र कुमार	औपनिषदिक कर्म-सिद्धान्त	लेख	३५
सुश्री कामिनी कुमारी	समकालीन योगदर्शन	लेख	४०
श्री सोनू कुमार	संस्कृत-साहित्य में नीति	लेख	४३
सुश्री रचना	नयी शती के पौराणिक हिन्दी उपन्यासों में धार्मिक सन्दर्भ	लेख	४५
डॉ. केवलकृष्ण पाठक	आओ आज मनायें होली	कविता	४८
	संस्थान-समाचार एवं विविध-समाचार		४९

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६६ होश्यारपुर, फाल्गुन २०७४; मार्च २०१८ संख्या १२

ऋतस्यर्तेनादित्या
यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः
शिक्षन्तो नोपशेकिम ।।

(अथर्व. ६.११४.२)

हे पूजनीयो! तुम (यज्ञवाहसः) यज्ञों को पूर्ण कराने वाले हो। (हमें दुःख है कि) हम (आरम्भ किए हुए) (यज्ञं) यज्ञ को (शिक्षन्तो) पूरा करने की इच्छा रखते हुए भी (नोपशेकिम) पूरा कर नहीं पाए। इसलिए हे आदित्यो! (ऋतस्य) अपने परम सत्य के द्वारा (नः) हमें (इस अपराध से) (मुञ्चत) छुड़ाओ।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

होली का रंग

-श्री कृष्ण अग्रवाल 'मंगल'

बचपन से पचपन तक कितने रंग बिरंगे रंग देखे,
कितने ही रंगदारों पर मैंने अपने सद्‌भावी रंग फेंके,
सब के सब निहाल हो गये, रंगों में बेहाल हो गये,
यह है रंगों की महिमा, जिसकी अपार है सीमा।
प्यार और दुलार का रंग, अपकार से उपकार का रंग,
दुश्मनों से दोस्ती का है रंग, नफरत से मोहब्बत का रंग।
पर अब ऐसा लगता है-
पग-पग पर उग्रवाद आतंकवाद के काले रंग की है छाया,
चहुँ ओर अशान्ति आततायी विषैला उन्मादी रंग है भरमाया
निज स्वारथ की रंगीली पिचकारी छोड़ रहे हैं,
दानवता की कसौटी पर मानवता तोल रहे हैं,
घुसपैठी घुस घुस कर अपना दुरंगी घोंसला बना रहे हैं।
कुचक्री चाल कुचालों से बहुरंगी हौसला बढ़ा रहे हैं।
मानो अब रंग में भंग हो रहा है।
काश! इस होली पर शुभ रंगों की ढाल बने,
तो सबकी हर्षित होली हो ले, एक दूजे पर प्रेम-रंग डालें।
सत्तापक्ष में सुनीति का रंग हो, विपक्ष में सुरीति का रंग हो,
तो जनता स्वत: ही सुप्रीति के रंग में रंग जायेगी।
रंगीले रसीले बन परस्पर पल पल संग पायेगी।
फिर उस रंग से एक ऐसी सुदृढ़ शक्ति उभरेगी,
अमंगल काले रंग को मिटाकर राष्ट्रीय रंग की भक्ति उबरेगी।
लाल पीले हरे नीले सप्त रंगी इन्द्रधनुषी रंगीन हो जाओ,
अत: इस होली पर विविध रंगों की गुणवेत्ता से प्रेरणा पावें
भारत के उत्थान हेतु 'मंगल' भविष्य की चेतना आवे।

-१६१, नेताजी सुभाष रोड, राजा कटरा, दो तल्ला, कोलकाता-७००००७।

वैदिक वाङ्मय में कृषिकर्म

- डॉ. देशराज शर्मा

वेद विश्व-वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, जो आदिकाल से ही मानव-जाति के लिए प्रकाश स्तम्भ रहे हैं। वेदों में ज्ञान और विज्ञान का अनन्त भण्डार विद्यमान है। यह वैदिक वाङ्मय संस्कृत भाषा का अत्यन्त समृद्ध एवं गौरवान्वित वाङ्मय है। वैदिक साहित्य की ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग आदि विभिन्न दिशायें हैं। यह विपुल वैदिक वाङ्मय भारतीय जन-जीवन, रहन-सहन आचार-व्यवहार, ज्ञान-विज्ञान, नैतिक-उच्चादर्शों, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि का मूलस्रोत माना जाता है।

वैदिक काल में 'कृषिकर्म' आर्यों की आर्थिक समृद्धि एवं समुज्वल जीवनयापन का द्योतक था। जीवनोपयोगी प्रत्येक वस्तु का उत्पादन वे स्वयं करते थे। उनकी आजीविका का मुख्य साधन खेती तथा पशुपालन था। ऋग्वेद के अनुसार अश्विन् को सर्वप्रथम हल (वृक) के द्वारा बीज बोने की कला का ज्ञानदाता माना जाता है।[१] इसी प्रकार अश्विन्देवों का कृषिकला के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। कृषक-दम्पत्ति अश्विन्देवों को पुष्टिवर्धक मानते हुए उनसे उन्नत खेती पुष्टिवर्धक अन्न, धन, भूमि, प्रजा एवं पशुधन आदि की सम्पन्नता की कामना करते हुए उन्हें स्थालीपाक से प्रसन्न करते हैं।[२]

अथर्ववेद के अनुसार राजा पृथीवैन्य को हल से भूमि जोतने की विद्या का जन्मदाता माना जाता है।[३] इन्हीं राजा (वेन-पुत्र) पृथी या पृथु के नाम से भूमि का नाम 'पृथ्वी' पड़ा है; क्योंकि इन्होंने सर्वप्रथम कृषिकर्म में अयोग्य, पथरीली भूमि को जोतकर समतल एवं कृषियोग्य बनाया था।

समस्त धनों में अन्न सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सम्पूर्ण जीवन की सत्ता अन्न में ही निहित है। अन्न को प्राण तक माना गया है।[४] इसलिए 'अन्नं बहु कुर्वीत'[५] यह आर्यों के आर्थिक जीवन का सूत्र वाक्य था। वे केवल कृषिकर्म से न केवल परिचित ही थे बल्कि एक निष्णात कृषक थे, जिन्हें यह ज्ञात था कि किस ऋतु में किस अन्न को अधिक मात्रा में पैदा किया जा सकता है। इसलिए वे समय, स्थिति, वातावरण को ध्यान में रखकर कृषिकर्म करते थे। ऋग्वेद के एक स्वतन्त्र सूक्त में सम्पूर्ण कृषिकर्म का उल्लेख मिलता है।[६] इस सूक्त के प्रारम्भिक तीन मन्त्रों में क्षेत्र के स्वामी देवता (क्षेत्रपति) से कृषि के लिए अनुकूल होने, पर्याप्त वर्षा करने तथा समस्त प्रकार की अनिष्टजन्य परिस्थितियों से सुरक्षा पाने हेतु प्रार्थना की गई है।

कृषक को कृषिकर्म के समुज्ज्वल विकास में निहित प्रविधियों का सम्यक् ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। कृषि की मुख्य चार प्रविधियाँ हैं- **कृषन्तः वपन्तः लुणन्तः मृणन्तः।**[७] इन्हीं प्रविधियों को ध्यान में रखकर कृषिकर्म करना

१. ऋग्वेद, ८.२२.६, १.११७.२१ २. कौशिकगृह्यसूत्र, २०.११ ३. अथर्ववेद, ८.१०(४)११
४. अन्नं वै प्राणां: ५. तैत्तिरीयोपनिषद् ६. ऋ. ४.५७ ७. शतपथ ब्राह्मण, १.६.१.३

उन्नत कृषि का द्योतक है। जिसमें इन बातों का पूरी तरह से ध्यान रखा जाना अपेक्षित है कि किस समय खेत की जुताई की जाए, किस समय बीज बोया जाए, कौन सा समय पकी हुई खेती की कटाई का है तथा अन्न को किस प्रकार से स्वच्छ बनाकर उसका भण्डारण किया जाए। इस प्रकार समय पर सम्यक् रूप से किया गया कार्य उन्नत कृषि का परिचायक है।

कृषिकर्म से अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए प्राय: किसान अपनी भूमि की उर्वराशक्ति को ध्यान में रख कर भूमि-विभाजन कर देते थे। भूमि के तीन भेद मिलते हैं- १. उर्वरा- अर्थात् उपजाऊ भूमि। २. इरिण- (ऊषर) ऐसी भूमि जो उपजाऊ न हो। ३. शष्प्य- चरागाह योग्य भूमि[८]।

ऋग्वेद में कृषिकर्म करना चाहिए- इस प्रकार का साक्षात् निर्देश है[९]। कृषिकर्म को मानव जीवन के कल्याण का सुयोग्य साधन मानते हुए अत्यधिक प्रशंसा की गई है[१०]। समस्त जीवों का जीवनयापन कृषिकर्म पर निर्भर करता है। अत: कृषिकर्म को उपजीवनीय या उपजीवा नाम से भी जाना जाता है[११]।

ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त[१२] में कृषिकर्म में प्रयुक्त होने वाले विविध उपकरणों का भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख मिलता है। जैसे- हल के लिए 'सीर', 'लाङ्गल' जुआ बांधने वाली रस्सी 'वरत्रा', चाबुक को 'अष्ट्रा', हल में प्रयुक्त पत्ती को 'फाल' तथा फाल से खेत में बनने वाली रेखा को 'सीता' इत्यादि नाम से सम्बोधित किया गया है तथा हल की मूंठ के लिए 'त्सरु' इत्यादि शब्द आए हैं। ऋग्वेद एवं गृह्यसूत्रों में हलवाहक को 'कीनाश[१३]' एवम् कृषि-योग्य भूमि के लिए 'क्षेत्र' शब्द मिलता है[१४]।

कृषिकर्म की संपूर्ण व्यवस्था को समझने वालों को कृषि-विशेषज्ञ कहा गया है। अथर्ववेद में उन्हें अन्नविद: कहा गया है[१५]। ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रों में जिस कृत्य को 'कृषिकर्म[१६]' के नाम से ही जाना जाता था, गृह्यसूत्रों में उक्त कर्म को 'लाङ्गलयोजनम्[१७]' तथा 'हलाभियोग[१८]' कहा गया है। मनुस्मृति तथा भगवद्गीता में भी वैश्यों की आर्थिक समृद्धि के मूलस्रोत कृषिकर्म की उत्कृष्टता का उल्लेख हुआ है[१९]।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कृषिकर्म रोहिणी नक्षत्र में करना चाहिए। गृह्यसूत्र के अनुसार कृषि-कर्म के लिए रोहिणी एवम् उत्तराफालगुनी, पारस्कर के अनुसार ज्येष्ठा नक्षत्र को उत्तम माना गया है[२०]। आजकल प्राय: चन्द्रतारानुकूल समय का विचार कर खेत की पूर्व दिशा में विधिवत् द्यावा-पृथिवी पूजन करने के बाद वपन कार्य किया जाता है। कौषीतकगृह्यसूत्र में इस विषय में विस्तृत विवेचन भी प्राप्त होता है[२१]।

---

८. अथर्व. १०.६.३३ ९. ऋ. १०.३४.१३ १०. तैत्तिरीयसंहिता, ४.१०,४.३;७.१-२

११. अथर्व. ८.१०(४)१२; तैत्तिरीयब्राह्मण, १.५.६.४ १२. ऋ. ४.५७

१३. ऋ. ४.५७.८। पारस्करगृह्यसूत्र, २.१३.४ १४. ऋ. १०.३३.६

१५. अथर्ववेद, ६.११६.१ १६. कौषीतकीगृह्यसूत्र, ३.१३, शंखायनगृह्यसूत्र, ४.१३

१७. पारस्करगृह्यसूत्र, २.१३ १८. गोभिलगृह्यसूत्र, ४.४.२६

१९. मनु., १.९०, ३.६४, १०.७९। गीता, १८.४४ २०. आश्वलायनगृह्यसूत्र, २.१०.२, पारस्करगृह्यसूत्र, २.१३.१

२१. कौषीतकीगृह्यसूत्र, ३.१३.२-६

वैदिक साहित्य में विशेषकर गृह्यसूत्रों में कृषिविषयक पूजापद्धति का पर्याप्त वर्णन किया गया है जिसको आधार मानकर उस समय पण्डितों द्वारा यज्ञ आदि करवाकर कृषिकर्म के अनुकूल स्थिति के लिए प्रार्थना यज्ञ इत्यादि कराये जाते थे।

कृषिकर्म में अन्न का विशेष महत्त्व है। इस कर्म के द्वारा जहां विविध प्रकार के दिव्य पौष्टिक अन्न किसान की आर्थिक समृद्धि के सूचक हैं, वहीं सम्पूर्ण सृष्टि में मानव-जाति का अस्तित्त्व अन्न में ही निहित है। इस सन्दर्भ में भगवान् कृष्ण कहते हैं- समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं[२२]। इससे ही मनुष्य हृष्ट-पुष्ट रहते हुए ओजस्वी, तेजस्वी एवं निरोग रहता है। अन्न को साक्षात् प्रजापति (ब्रह्मा) कहा गया है[२३]।

यजुर्वेद और तैत्तिरीयसंहिता में १. व्रीहि (धान), २. यव (जौ), ३. माष (उड़द), ४. तिल (तिल), ५. मुद्ग (मूँग), ६. खल्व (चना), ७. प्रियंगु (कंगुनी), ८. अणु (पतला या छोटा चावल), ९. श्यामाक (सांवा), १०. नीवार (धान), ११. गोधूम (गेहूँ), १२.मसूर (मसूर)। इस प्रकार १२ प्रकार के अनाज का नाम गिनाया गया है[२४]। तैत्तिरीय संहिता में इसके अतिरिक्त अन्य अन्नों के नाम मिलते हैं इनमें तीन प्रकार के व्रीहि (धान) तथा गवीधुक का भी उल्लेख है[२५]।

बृहदारण्यक उपनिषद् में व्रीहि, यव, तिल, माष, अणु, प्रियंगु, गोधूम (गेहूँ) मसूर, चना, खलकुल (कुलत्थ कुलथी) इनका भी नाम मिलता है[२६]।

तैत्तिरीयसंहिता में भी मुख्यत: तिल, यव, व्रीहि और माष का वर्णन मिलता है[२७]।

एक वर्ष में मुख्यत: दो फसलें तैयार होती थीं[२८]। इन्हें रबी और खरीफ की फसल कहा जाता है। इन दोनों फसलों को कृषक पहले पितरों, देवों को अर्पित कर तदनन्तर ज्योतिषी के कथनानुसार शुभ दिन पर घर में बनाकर खाते थे[२९]।

वैदिक काल में कृषिकर्म से सम्बन्धित कार्यों का शुभारम्भ ज्योतिषियों से पूछकर अच्छे दिनवार में किया जाता था। इसी परम्परा को ध्यान में रखते हुए आज भी प्राय: कृषक ज्योतिषियों से मुहूर्त निकालकर ही खेती सम्बन्धी सभी कार्य करते हैं।

इस प्रकार कृषिकार्य सतत गंगा, यमुना की धारा के समान अवाध गति से थोड़े-बहुत बदले रूप में वैदिक काल से ही चला आ रहा है। कृषक प्राचीन काल से आजतक किसी न किसी प्रकार कृषिकर्म को बढावा देते हुए वैदिक संस्कृति को जीवित रखे हुए हैं।

-कुन्दन कॉटेज, समरहिल, शिमला-१७१००५ (हि.प्र.) मोबा: ०९४१८२०६७२७

---

२२. गीता, ३.१४ २३. प्रश्नोपनिषद्, १.१४ २४. तैत्तिरीयसंहिता, ४.७.४.२.
२५. तैत्तिरीसंहिता, १.८.१०.१ २६. बृहदारण्यक उपनिषद्, ६.३.१३
२७. तैत्तिरीय संहिता, ५.१.७.३. २८. अथर्व. ६.१४०.२ २९. कौषीतकीगृह्यसूत्र, ३.५.१

मामनुस्मर, युध्य च

–डॉ. कर्णसिंह 'वाग्योगी'

वेदों का सार उपनिषदों में है और उपनिषदों का सार श्रीमद्भगवद्गीता में है। उसी 'गीता' में श्रीकृष्ण की वाणी का सारभूत वाक्य है- 'मामनुस्मर, युध्य च'। यह एक अकेला वाक्य ही हमारे जीवन का पथ-प्रदर्शन करने में सक्षम है।

महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन परिस्थिति के सामने हार मान लेता है और जो कर्म करने वह युद्ध के मैदान में गया था, उसे नहीं करता है, तब श्रीकृष्ण ने उपर्युक्त वाक्य कहकर उसका मार्गदर्शन किया है।

'मामनुस्मर, युध्य च' इस वाक्य में दर्शन और जीवन का बहुत ही संक्षेप में और बहुत ही सरल शैली में बहुत ही सुन्दर समन्वय हुआ है। 'गीता' में यह वाक्य एक विशेष परिस्थिति में अर्थात् युद्ध के समय और एक विशेष व्यक्ति अर्थात् अर्जुन के लिए कहा गया है। किन्तु वस्तुत: यह सभी परिस्थितियों में और सभी मानवों के लिए है। हम सभी कोई न कोई काम करते हैं, जैसे उस समय अर्जुन युद्ध का काम कर रहा था। वस्तुत:, हमारे जीवन का ही दूसरा नाम कर्म है। बिना कर्म के तो हमारा जीवन ही व्यर्थ है। ऐसे जीवन का इस जगत् में कोई मतलब ही नहीं है। हमारा शरीर है, हमारी इन्द्रियाँ हैं, हमारे हाथ-पैर, आँख-नाक-कान आदि हैं, तो हम कुछ न कुछ काम तो उनसे लेंगे ही, कुछ न कुछ करेंगे ही। गीता में ही अठारहवें अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में श्रीकृष्ण का दूसरा वाक्य है- 'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषत:।' अर्थात् कोई भी देहधारी कर्म को पूरी तरह से नहीं छोड़ सकता है। सामान्यत:, संसार में अपने दैनिक व्यवहार में हम जिसे निठ्ठल्ला कहते हैं, वह व्यक्ति भी, यदि हाथ-पैर नहीं चलाता है तो आँखों से देखता और कानों से सुनता तो है ही। इतना भी नहीं तो वह श्वास-प्रश्वास तो लेता ही है। हाँ, यदि वह इतना भी नहीं करता है तो न तो वह जीवित है और न ही उसकी गिनती देहधारियों में होती है। वहां तो प्राण देह को त्याग चुके हैं। उसके विषय में यहां बात करना ही व्यर्थ है।

ऊपर हमने दर्शन और जीवन की बात कही है। दर्शन और जीवन से भी अधिक गहरे उतरकर यदि अध्यात्म और अधिभूत की या आध्यत्मिकता और भौतिकता की बात करें तो अधिक उपयोगी होगा। वस्तुत:, ये दोनों अलग-अलग न रहकर एक साथ ही रहने वाले हैं। आध्यात्मिकता के बिना भौतिकता की बात करना उतना ही व्यर्थ है, जितना व्यर्थ आत्मा के बिना देह की बात करना है। सच बात यह है कि अध्यात्म और अधिभूत से जैसे सृष्टि का अस्तित्व सामने आया है, वैसे ही आत्मा और देह से मानव का अस्तित्व प्रकट हुआ है। हमारे सारे दर्शन इसी बात को स्पष्ट करते हैं। इसी सारभूत बात को श्रीकृष्ण ने 'मामनुस्मर, युध्य च' इस छोटे से वाक्य में प्रस्तुत किया है। यहां गीता का तात्पर्य है कि आत्मा को साथ लेकर देह से काम लो। आत्मा को साथ न लेने पर वही हालत होगी, जो अर्जुन की हुई है। अर्जुन का ध्यान यहां केवल योद्धाओं की देह तक सीमित रहा। वह भूल गया कि इन सबकी देह में परमात्मा का अंश जीवात्मा के रूप में विद्यमान है। जीवात्मा और परमात्मा के सम्मुख रहते अपने-पराये का भेद मिट जाता है। जो मैं हूँ, वही दूसरा भी होता है। तब मेरे मारने की और दूसरे के मरने की बात ही नहीं आती। वहां न कोई मारता है और

डॉ. कर्णसिंह 'वाग्योगी'

न कोई मरता है। सब सदा रहते हैं-

न त्वेवाहं जातु नासं, न त्वं, नेमे जनाधिपा:।
न चैव न भविष्याम: सर्वे वयंमत: परम्।।
गीता २/१२

श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि मैं, तुम या ये राजा पहले नहीं थे और न ऐसा ही है कि भविष्य में भी हम सब नहीं होंगे। तात्पर्य यह है कि हम सब आत्मस्वरूप में पहले भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। इसलिए हे अर्जुन! तुम आत्मस्वरूप को ही देखो, देहरूप को नहीं।

अब विचार कीजिए यदि आत्मस्वरूप परमात्मा को विस्मृत कर देने से अर्जुन-जैसे मानव के साथ ऐसा हो सकता है, तो फिर अन्य किसी भी मानव के साथ क्यों ऐसा नहीं होगा।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि हम सदा ही परमात्मा को स्मरण करते हुए अपना कर्तव्य कर्म करते रहें। ऐसा करने से अनेक लाभ होंगे।

पहला लाभ यह होगा कि जब हम ईश्वर को स्मरण करते हुए कोई काम करेंगे, तो कोई भी बुरा काम, कभी भी हमसे नहीं होगा। यहां वह उदाहरण देखा जा सकता है, जहां एक गुरु अपने शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए उनसे कहता है कि वह एक-एक लकड़ी ले जायें और उसे ऐसी जगह ले जाकर तोड़कर लायें, जहां उन्हें कोई भी न देख रहा हो। उन शिष्यों में से केवल एक शिष्य लकड़ी को बिना तोड़े लौटा लाया, क्योंकि उसे कोई भी स्थान ऐसा नहीं मिला, जहां उसे ईश्वर न देख रहा हो। ऐसा तभी हो सकता है, जब उसे हर समय हर स्थान पर ईश्वर का स्मरण रहा हो।

आज हम अपने चारों ओर जो भ्रष्टाचार और बेईमानी का वातावरण देख रहे हैं, उसका सबसे पहला और सबसे बड़ा कारण यही है कि हम काम करते समय ईश्वर को भूल जाते हैं।

काम का प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम ईश्वर को स्मरण करना, भारतीय संस्कृति की विशेषता है। यहां प्रारम्भ में स्मरण करने से तात्पर्य यही है कि काम करते हुए भी हम ईश्वर का स्मरण अवश्य ही करते रहें। ईश्वर को स्मरण करना ही, वस्तुत: अध्यात्म का सार है। जीवन का सार कर्म करना है और जब हम ईश्वर को स्मरण करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तो हमारा जीवन सफल हो जाता है।

ईश्वर को स्मरण करते हुए काम करने का द्वितीय लाभ यह है कि हम उस काम की सफलता-असफलता से निश्चिन्त हो जाते हैं। वह काम फिर ईश्वर का काम हो जाता है, उसके हानि-लाभ से हमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। जैसे सेवक के द्वारा किये हुए काम की जिम्मेदारी स्वामी की होती है। काम से होने वाले हानि-लाभ की जिम्मेदारी भी उस सेवक के मालिक की ही होती है, सेवक की नहीं।

आध्यात्मिकता, भारतीय संस्कृति की सबसे प्रथम और सबसे बड़ी विशेषता है। अपनी इस विशेषता को भूल जाने के कारण ही आज हमारा इतना पतन हो गया है कि हम विश्व के अन्य अनेक देशों के सामने खड़े होने की भी स्थिति में नहीं रहे हैं।

आध्यात्मिकता को जीवन में बनाये रखने के लिए हमें अपने बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए। हमारे बच्चों की शिक्षा में गुणात्मक सुधार की आवश्यकता है। गुणात्मक सुधार के लिए बच्चों के पाठ्यक्रम में केवल आजीविका कमाने के साधनों की ही शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। उन्हें सच्चाई और ईमानदारी की वैसी शिक्षा भी मिलनी चाहिए जिससे वे उपलब्ध आजीविका के साधनों का उपयोग अच्छी प्रकार से कर सकें।

-रूपनेत्रालय, शिवाजी मार्ग, मेरठ। फोन : ०१२१-२६४२२५६

मानव-जीवन में देवताओं का महत्त्व

–प्रो. (डॉ.) घनश्याम उनियाल

मानव-जीवन में देवताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य का सुख और दु:ख देवताओं के अधीन है। भारतीय धर्म में देवताओं का विशेष स्थान है। प्रत्येक भारतीय देवताओं की उपासना और पूजा को अपना परम धर्म समझता है। अधिकांश भारतीयों का दैनिक जीवन तो देवोपासना और देवपूजन से ही प्रारम्भ होता है। भारत में देवोपासना को प्रतिष्ठा का प्रतीक और देवोपासक को प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने मनुष्य के सुख और दु:ख को देवता के अधीन माना है और प्रत्येक मनुष्य को देवताओं के पूजन का निर्देश दिया है। उसका कथन है कि यह समस्त जगत् और प्रजा, मनुष्य के सुख और दु:ख तथा मनुष्य के शुभ और अशुभ कर्मों का फल देवताओं के अधीन है। अत: मनुष्य को देवताओं का पूजन अवश्यमेव करना चाहिए।[१]

मानव-जीवन में देवताओं के महत्त्वपूर्ण स्थान में अनेक कारण हैं– प्राकृतिक देवताओं का मानवशरीर के रूप में मान्यता का होना, प्राकृतिक के द्वारा मनुष्य का पथप्रदर्शन करना, उनमें परस्पर उपकारिता का गुण विद्यमान होना, प्राकृतिक देवताओं का मनुष्य के धन के रूप में विद्यमान होना, शरीरस्थ देवताओं के स्वरूपज्ञान से शाश्वत सुख की प्राप्ति होना और देवोपासना से देव आदि श्रेष्ठ पदों की प्राप्ति होना।

प्राकृतिक देवताओं का मानवशरीर के रूप में परिवर्त्तित होना :-

सूर्य आदि प्राकृतिक देवता ही मानवशरीर के रूप में परिवर्त्तित होते हैं। मनुष्य का शरीर और इन्द्रियाँ आदि सूर्य आदि प्राकृतिक देवताओं के ही परिवर्त्तित रूप हैं। अग्नि, वायु, सूर्य, दिक् चन्द्रमा, मृत्यु, जल, ओषधियाँ और वनस्पतियाँ ये सभी प्राकृतिक देवता हैं रेत में वर्णन मिलता है कि– इनमें से अग्नि वाणी के रूप में मुख में, वायु प्राणों के रूप में नासिका में, सूर्य चक्षुरिन्द्रिय के रूप में नेत्रों में, दिशाएं श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में कानों में, चन्द्रमा मन के रूप में हृदय में, मृत्यु अपान वायु के रूप में नाभि में, जल वीर्य के रूप में लिङ्ग में तथा ओषधियाँ और वनस्पतियाँ रोम के रूप में त्वचा में प्रविष्ट हैं। इस विषय में ऐतरेयोपनिषद् के ये वचन दर्शनीय हैं[२]–

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच प्राकृतिक देवताओं की संज्ञा पञ्चमहाभूत है। इन पञ्चमहाभूतों के सम्मिलितरूप से मनुष्य के शरीर की रचना मानी गई है। पञ्चमहाभूतों से रचना के कारण मनुष्य-शरीर को पञ्चभौतिक शरीर कहते हैं। इस विषय में प्रश्नोपनिषद् के ये वचन द्रष्टव्य हैं– **तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निराप: पृथिवी।**[३] इन पञ्चमहाभूतों में से पृथिवी मनुष्य को धारण भी करती है और उसे अन्नादि भोग्यपदार्थ भी प्रदान करती है। जल मनुष्य

१. वि.ध.पु. ३.२८८.१-२, द्र. कल्याण देवताङ्क, पृ. ३४
२. ऐ.उ. १.२.४.

की प्यास बुझाता है। सूर्य का तेज मनुष्य को प्रकाश, अग्नि का तेज उष्णता और वायु प्राणशक्ति प्रदान करता है तथा आकाश मनुष्य को उसकी स्थिति के लिए अवकाश प्रदान करता है।

प्राकृतिक देवताओं के द्वारा मनुष्य का पथप्रदर्शन :-

सूर्य आदि प्राकृतिक देवता मनुष्यमात्र का पथप्रदर्शन करते हैं। ये देवता स्वभाव से ही कर्मशील होते हैं, मानवमात्र के लिए कल्याणकारी होते हैं और अविरोधभाव से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते हैं। ये देवता मनुष्यमात्र को मूक भाषा में कर्मशील बनने का, मानवमात्र का कल्याण करने का और अविरोधभाव से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने का संदेश देते हैं। वैदिक ऋषि मनुष्यों को सूर्य आदि प्राकृतिक देवताओं के समान मिलकर कर्म करने का, मिलकर निर्णय करने का और परस्पर एक-दूसरे का मित्र बनने का संदेश दे रहा है।[४]

दया, दान, परोपकार, स्वार्थहीनता और मैत्रीभाव आदि गुणों की संज्ञा शाश्वत धर्म है। यह धर्म सार्वकालिक तथा सार्वजनीन है तथा सबके द्वारा आचरणीय है। प्राकृतिक देवताओं में स्थित गुण सभी के लिए कल्याणकारी होते हैं। अत: वैदिक ऋषियों ने सभी के कल्याण को ध्यान में रखकर इन प्राकृतिक देवतओं के गुणों को आधार मानकर मनुष्य के शाश्वत धर्म का निर्माण किया है। प्राकृतिक देवताओं के गुणों पर आधारित शाश्वत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। तैत्तिरीय आरण्यक ने इसी शाश्वत धर्म को जगत् में प्रतिष्ठा का एकमात्र आधार माना है- **धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा।** मनुस्मृति ने भी इसी शाश्वत धर्म के विषय में कहा है कि धर्म का पालन जीवन है और उसका त्याग मरण- **'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:'।**[५]

प्राकृतिक देवताओं में परस्पर उपकारिता का गुण विद्यमान होना:- प्राकृतिक देवताओं में परस्पर उपकारिता का गुण विद्यमान होता है। गीता और मनुस्मृति दोनों की यह मान्यता है कि यदि मनुष्य यज्ञ के द्वारा देवताओं का उपकार करते हैं, तो देवता भी वृष्टि के द्वारा मनुष्य का उपकार करते हैं। गीता का कथन है कि 'यज्ञ से सन्तुष्ट देवता मनुष्य को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं'।[६] यज्ञ से सन्तुष्ट देवता किस प्रकार से मनुष्य का उपकार करते हैं, इस विषय में गीता का कथन है कि यज्ञ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, अन्न के भक्षण से रक्त और वीर्य बनता है और वीर्य से प्राणी उत्पन्न होते हैं[७]।

मनुस्मृति ने भी गीता के समान एक विशेष क्रम से यज्ञ से प्रजा की उत्पत्ति मानी है। उसका कथन है कि अग्नि में प्रदत्त आहुति सूर्य में स्थित होती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है[८]।

प्राकृतिक देवताओं का मनुष्य के धन के रूप में विद्यमान होना:- अग्नि आदि प्राकृतिक देवता मनुष्य के धन के रूप में विद्यमान होते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् ने इन आठ प्राकृतिक देवताओं को अष्टवसु की संज्ञा प्रदान की है- अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ:,

---

३. प्र.उ. २.२   ४. ऋ. १०.१९१.२.,४   ५. मनु. ८.१५
६. गीता. ३.१२   ७. वही, ३.१४   ८. मनु. ३.७६

चन्द्रमा और नक्षत्र[९]। इस उपनिषद् ने अष्टवसुओं में परिगणित प्रत्येक देवता को धनरूप माना है।

मनुष्य का वास्तविक धन उसका शरीर, उसकी इन्द्रियाँ, उसके प्राण और अन्नादि विविध भोग्यपदार्थ हैं। ये अष्टवसु ही मनुष्य के शरीर के रूप में, इन्द्रियों के रूप में, प्राणों के रूप में और अन्नादि विविध भोग्यपदार्थों के रूप में परिणत होते हैं। अत: अष्टवसुरूप प्राकृतिक देवता ही मनुष्य के वास्तविक धन हैं। ये अष्टवसु संसार की प्रत्येक वस्तु को अपने में धारण करते हैं, संसार को निवास के योग्य बनाते हैं और इनमें संसार का हित विद्यमान होता है, इस कारण से इन्हें 'वसु' कहा जाता है। निरुक्त ने, हरिस्वामी ने और बृहदारण्यकोपनिषद् ने इन्हीं अर्थों में वसु शब्द का प्रयोग किया है[१०]।

ये अष्टवसु धनरूप हैं। इसी कारण से भक्त इनसे धनप्रदान करने की प्रार्थना कर रहे हैं- **अस्मे धत्त वसवो वसूनि**[११]। श्रीमद्भागवत ने भी वसुओं को धन का देवता माना है। उसका कथन है कि धन की कामना करने वाले मनुष्य को 'वसु' नामक देवताओं की प्रार्थना करनी चाहिए- **'वसुकामो वसून्'**[१२]।

शरीरस्थ देवताओं के स्वरूपज्ञान से शाश्वत सुख की प्राप्ति होना :- इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा ये शरीरस्थ देवता हैं। गीता की दृष्टि में शरीरस्थ इन देवताओं के स्वरूपज्ञान से मनुष्य को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। गीता का कथन है कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु काम है। इस काम की उत्पत्ति रजोगुण से होती है। यह काम मनुष्य के ज्ञान को उसी प्रकार से आच्छादित कर देता है जिस प्रकार से धूआँ अग्नि को, मल दर्पण को और जेर गर्भ को आच्छादित कर देता है। इस विषय में गीता के वचन द्रष्टव्य हैं[१३]।

गीता की मान्यता है कि इस काम के अधिष्ठान शरीरस्थ ये तीन देवता हैं- इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि- **इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठान-मुच्यते**[१४]। शरीरस्थ चार देवताओं में इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि की अपेक्षा जीवात्मा श्रेष्ठ है। गीता का कहना है कि जब मनुष्य को शास्त्र या आचार्य के उपदेश से यह ज्ञान हो जाता है कि इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा इन चार देवताओं में से जीवात्मा श्रेष्ठ है, तब मनुष्य की जीवात्मा सबल हो जाती है, जीवात्मा के सबल होने पर जीवात्मा बुद्धि को, बुद्धि मन को और मन इन्द्रियों को वश में कर लेता है। जब बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ ये तीनों जीवात्मा के वश में हो जाते हैं, तब इन तीनों में विद्यमान काम का नाश हो जाता है और काम का विनाश हो जाने पर मनुष्य को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। इसी कारण से गीता के श्लोक में कामरूपी शत्रु को मार डालने का निर्देश दिया है[१५]।

गीता के समान बृहद्देवता ने भी शाश्वत सुख की प्राप्ति में ब्रह्माण्डगत और शरीरगत देवतओं के स्वरूपज्ञान को कारण माना है। उसका कथन है कि वैदिक और लौकिक कर्मों के फल की प्राप्ति तब तक सम्भव नहीं है, जब तक मनुष्य को क्रियमाण कर्म के देवता के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न हो जाए[१६]।

---

९. बृ.उ.३.९.३
१०. निरु.१२.४.४१; श.ब्रा.११.६.३.६; बृ.उ.३.९.३
११. यजु.८.१८
१२. भागवत, २.३.३
१३. गीता, ३.३७-३८
१४. वही, ३.४०
१५. वही, ३.४३

देवोपासना से देव आदि श्रेष्ठ पदों की प्राप्ति होना :- देवताओं की उपासना से देव आदि श्रेष्ठ पदों की प्राप्ति होती है। गीता की मान्यता है कि देवपूजन करने वाले मनुष्य देवताओं को, पितृपूजन करने वाले मनुष्य पितरों को, भूतपूजन करने वाले मनुष्य भूतों को और परमात्मा का पूजन करने वाले मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करते हैं[१७]।

वाल्मीकि रामायण का कथन है कि देवता पूजन से सन्तुष्ट होकर मनुष्य को यक्षपद, अमरपद और राजपद प्रदान करते हैं-

यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च।
अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः[१८] ।।

इस प्रकार प्राकृतिक देवताओं का मानव-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के सुख-दुःख तथा शुभ-अशुभ फल इन्हीं प्राकृतिक देवताओं के अधीन हैं। मनुष्य के धनरूप शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण एवं अन्नादि विविध भोग्यपदार्थ भी इन्हीं प्राकृतिक देवताओं की देन हैं। ये प्राकृतिक देवता मनुष्य को मूकभाषा में कर्मशील बनने का, सबके लिए कल्याणकारी होने का और अविरोधभाव से कर्त्तव्य निर्वाह करने का सन्देश देते हैं। यज्ञ से उपकृत देवता मनुष्य को वृष्टि, अन्न एवं प्रजा प्रदान करते हैं और उपासना से उपकृत देवता मनुष्य को देव एवं यक्ष आदि श्रेष्ठपद प्रदान करते हैं।

यद्यपि मनुष्य प्रत्यक्षरूप से सूर्य आदि प्राकृतिक देवताओं से उपकृत होता है लेकिन ये सूर्य आदि प्राकृतिक देवता परमदेवता और ईश्वरदेवता के ही व्यक्तरूप हैं। इन देवताओं में प्रतीयमान, दृश्यमान एवम् अनुभूयमान गुण एवं क्रियाएं परमदेवता और ईश्वरदेवता की ही हैं, अतः बीजरूप होने से जो उपकार सूर्य आदि प्राकृतिक देवता करते हैं वह उपकार परमदेवता और ईश्वरदेवता का ही माना जाता है। इसी कारण परमदेवता और ईश्वरदेवता मनुष्य के विशेष आराध्य देवता हैं।

-पूर्व आचार्य, विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारत-भारती अनुशीलन संस्थान,
(पञ्जाब वि. पटल), साधु आश्रम, होशियारपुर

---

१६. बृ.दे.१.४
१७. गीता, ९.२५
१८. वा.रा.३.११.३

आज के सन्दर्भ में वैदिक सूक्तियों की व्याख्या

–शास्त्री दीनानाथ गौतम

माताभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः:- अथर्ववेद १२/१/१२ भूमि मेरी माता है और मैं पुत्र धरती का हूँ। क्योंकि हम इस धरती मां के पुत्र हैं। अतः मां की प्रतिष्ठा दाव पर लगती देख नहीं सकते हैं और इस धरती की मिट्टी जल, वायु, आकाश और तेज प्रकाश रूपी पांच तत्त्वों का मिश्रण हमारे शारीरिक पुत्तले में हैं हम अगर जन्मदात्री मां का दु:ख सहन नही कर सकते हैं तो धरती मां का भी दु:ख दर्द हम झेल नहीं सकते हैं। अगर धरती व आकाश आपस में मिलकर सांठ-गांठ करके हमें दोनों हाथों से लूटना शुरु करदें तो हमारे शरीर में क्रान्ति की लहर भी तरंगे लेना शुरु कर देगी तो स्वाभाविक है कि परिवर्तन की बाढ अवश्य आएगी तो फिर नदियों के आर-पार तटीय क्षेत्रों को तो नुकसान होगा ही होगा। इसे कोई रोक नही सकता है इसलिए हम सभी को मिल बैठ कर स्वस्थ चिन्तन करना है।

आरोहणम् आक्रमणम् जीवतो जीवतो अयनम्- अथर्ववेद ५.३०.७

उन्नत होना आगे बढ़ना ही प्रत्येक जीव का लक्ष्य है। इस लिए लोकतन्त्र को महत्त्व दिया गया है। पहले बादशाही/राजशाही और तानाशाही सदियों तक राजा-महाराओं व बादशाहों व उनके बजीरों ने चलाई थी तो वंशपरम्पराओं को तथा जातिवाद, वर्गवाद को ही महत्त्व देते रहे थे। तभी तो देश दूसरे देश के अधीन हुआ था और उपर्युक्त नादिरशाही से समाज में आम आदमी का जीना भी दूभर हो गया था। इसलिए समूचे देश में क्रान्ति की लहर उत्पन्न होकर असंख्य लोगों को भी अपनी जिन्दगियां दाव पर लगानी पड़ी थीं तब कहीं हजारों बलिदान देकर ही स्वतन्त्रता की लहर लानी पड़ी थी। अब भी ऐसा हो सकता है। यदि हम लोग स्वतन्त्रता के प्रति लापरवाह रहे तो पुनः हमें जन-आन्दोलनों में जूझना पड़ सकता है

सुसस्याः कृषीष्कृधि- यजुर्वेद ४/१०

हम अच्छी फसलें उगाएं। हम कृषि, उद्योग, वाणिज्य एवं कलाकौशल के द्वारा अथवा सरकारी-गैरसरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी बनकर ही ठीक जीवन निर्वाह करने का उपाय निकालें, कृषि-बागवानी को भी अत्युत्तम कर्म माना गया है। वस्तुतः हमारा देश भारत तो कृषि- बागवानी प्रधान देश है। यहां नानाविध अन्न-धन और फूल-फलों के उपजाऊ भूमिखण्ड हैं। अतः कृषि-वानिकी हमारा पूर्वज धन्धा भी है, और अन्न ही प्राण है, वनौषधियां भी हमारी रक्षा करती हैं घास-पात से हम पशुपालन करते हैं। पशु- पालन भी कृषि का मूलाधार होता है और गाय- भैंस का दूध, घी एवं दही, छाछ हमारे ताकतवर भोज्य पदार्थ हैं। भेड़-बकरी की ऊन-शैली हमारे तन-वदन को वस्त्र देती है, और बैल कृषि जोतने में सहायक होते हैं, पहाड़ों पर घोड़े-खच्चर हमारा बोझ ढोते हैं तो रेगिस्तानों में ऊँट भार वहन में सहयोग करता है। इसलिए कृषिधन प्राप्त करने के लिए पशुधन का होना भी नितान्त आवश्यक है।

शास्त्री दीनानाथ गौतम

उपसर्प मातरं भूमिम्-ऋग्वेद १०/१८/१०

हम मातृभूमि की सेवारत रहें। सभी इस धरती-धन की सुरक्षा-सेवा में अपना समय बिताएं, और मातृभूमि की रक्षार्थ तत्पर रहें। यही हमारा राष्ट्रधर्म होना आवश्यक है जातिगत, वर्गगत विद्वेष से परे रह कर मातृभूमि को ही सर्वोपरि समझें। हमारी मातृभूमि भारत पूर्वज ऋषि-मुनियों का भूखण्ड रहा है यहां वेद-उपनिषद् आरण्यक ग्रन्थों की रचना हुई है और ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार भी इसी धरती पर हुआ है। किन्तु विदेशी शासकों ने हमारे इतिहास को नष्ट करने का कुप्रयास भले ही किया है। जैसे कि हमारा वैदिक साहित्य भारतीय संग्रहालयों में वेशक आधा-अधूरा मिलता है लेकिन जर्मन की वर्लिन पुस्तकालय एवं संग्रहालय में आज भी विद्यमान है। अतः जापान जैसे देश आज भी भारतीय संस्कृति एवं इतिहास तथ्यों व कथ्यों पर शोधकार्य कर रहे हैं। हमारा सौर-विज्ञान एवं पृथ्वी व पाताल तक का हमारे ग्रन्थों में सविस्तार वर्णन है। यही कारण रहा है कि भारत देश विश्व का अग्रणी दिग्दर्शक देश आज भी है। इस बात का झूठलाया नहीं जा सकता है कि मानवीय सभ्यता का बोध भारतीय साहित्य पर निर्भर है। वेद, उपनिषद् एवं शास्त्र हमारे दिशानिर्देशक अथवा पथप्रदर्शक श्रेष्ठतम ग्रन्थ हैं। साथ ही हमें मानवता के मूल मन्त्र देते हैं आज उपर्युक्त ग्रन्थों के द्वारा ही सौर-विज्ञान का ज्ञान हमें उपलब्ध हो रहा है। आयुर्वेद से शल्य-चिकित्सा से लेकर औषधीय विज्ञान तक हमारे वैज्ञानिकों की शोध कार्यशाला अन्वेषण करके नित नई चिकित्सा सम्बन्धी जानकारियां प्राप्त करती नज़र आ रही है। हमारी इस भारतखण्ड भूमि की शान एवं विज्ञान विद्याएं विभिन्न देशीय वैज्ञानिकों तक पहुंच कर आश्चर्यजनक उपलब्धियां हासिल कर रही हैं। एक बात स्पष्ट है कि कभी भी हमें भूलना नहीं चाहिए कि जो कुछ भी आज संसारभर में किसी भी देश में नई खोज हो रही है उसका मूल आधार भारतीय ऋषि-मुनियों व दार्शनिकों की ही पुरातन महान् देन है। आज विश्व जो देख रहा हैं वह भारतीय दर्पण में हमारे पूर्व ऋषियों ने संजोकर रखा है केवलमात्र ही इसकी खोजवीन करने की जरूरत है।

आदीनाः स्याम शरदः शतम्- यजु. ३६.२४

गरीबी रहित होकर सौ साल जिएं। इसलिए हमारे ग्रन्थों में कहा है कि हम गरीबी भी नेक-इरादों से दूर करके सौ साल तक जीवित रहें, और सैकड़ों लोगों एवं जीवधारी प्राणियों के लिए हम इस धरा-मण्डल में उत्पन्न होकर परोपकारार्थ किसी के काम आएं। मनुष्यजीवन परहितार्थ प्रयोगार्थ बना हुआ है। हम किसी के काम आएं, किसी से वैर-दुश्मनी न करके मनुष्य न केवल मनुष्य से ही प्रेम प्यार रखे, बल्कि पशु-पक्षियों के प्रति भी सद्भावनाएं रखें। अतः पेड, पौधे भी हमारे साथी हैं जो हमारा प्राकृतिक सहयोग देते हैं वातावरण को अनूकुल रखते हैं। पानी हमारी प्यास भी बुझाता है तो नहलाता, धुलाता भी है। धरती की माट्टी हमारी मातृवन्दनीय है। अन्नधन की उपज बढ़ाती है कन्दमूल फल प्रदान करती है, और मानवीय जीवन का मूल-आधार अन्नधन-दात्री है। अतः जन्म से लेकर जीवनभर एवं मृत्यु उपरान्त भी अपनी गोदी में लेकर प्राणी के जीवन को बल प्रदान करती है।

मा जीवेभ्यः प्रमद :- अथर्व.८/१/७

प्राणियों के प्रति बेपरवाह न हों। अतः स्थलचर, नभचर, जलचर सभी प्राणियों का प्रकृति के साथ आधाराऽधेय सम्बन्ध है। इसलिए जीवहत्याएं एवं इनका घात-प्रतिघात भी न होने दें क्योंकि ऐसा करने से प्रकृति में असन्तुलन उत्पन्न होकर भयंकर परिस्थितियां सामाजिक जीवन के लिए भी घातक हो सकती हैं। अतः इस संसार में मनुष्य से लेकर सभी जीवधारियों को सृष्टिरचना-कर्ता ने किसी काम के लिए ही बनाया और तमाम जीवधारी एक-दूसरे के सहयोगी बनाकर स्थापित हैं। इसलिए वेद-वाक्यों में भी कहा है कि जीवधारियों को न तो परस्पर लड़-झगड़ कर करने व मारने दें और न ही मनुष्य भी बन्दूकधारी बन करके अथवा गलाफांस लगा कर या फिर किसी भी शस्त्र, अस्त्र एवं पत्थर-टुकड़ों से या काष्ठ-टुकड़ों से पशु-पक्षियों की हत्याएं करे ताकि सभी प्राणी एक-दूसरे के पूरक बने रहें।

मा गृधः कस्यस्विद्धनम्- यजु.४०/१

किसी के धन पर ललचाओ मत। दूसरे के धन को लूटने व हड़पने की इच्छाओं को बिल्कुल परित्याग करदे। परधन का लालची मनुष्य कभी भी सुख नहीं पाता है अपितु दुःखदायक घेरों में फंस जाता है। धनलिप्साएं मनुष्य को स्वर्ग के बजाय नरक की ओर दौड़ाती हैं। अतः पराधीन जीवन, परधन-लिप्सा और परनारीसंगम सर्वथा हानिप्रद परिणाम में भयंकर रहता है। अतः धन-दौलत वही है जो नेकनियति से जोड़ी गई हो, और ठीक फलीभूत भी होती है। दूसरों से लूटकर लाया, चोरी करके इकट्ठा किया धन न तो आने वाली सन्तान को लाभप्रद रहता है न इकट्ठा करने वाले को ही मानसिक शान्ति प्रदान करता है। इसलिए नीतिकारों ने भी कहा है कि "परधनं लोष्ठवत्" दूसरे का धन पत्थर टूकड़ों के बराबर समझ लेना चाहिए। परधन लूट-खसूट करने वाला अथवा चोर, डाकू कभी भी सुखमय जीवन नहीं जी सकता है किसी न किसी चक्कर में ही पूरे जीवनभर फंसा रहता है

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर- अथर्व. ३-२४-५ सैकडों हाथों से जोड़ो हजारों हाथों से बांटो। यदि हम सौ हाथों से धन दौलत कमाते हैं तो हजारों हाथों से हम उसे बांटे भी। ऐसा हमारे ऋषि-मुनियों का हमें दानधर्म करने का संदेश है। हम आकूत धन-सम्पत्ति पैदा करके साथ तो कुछ भी नहीं ले जाएंगे, केवल अच्छाई-बुराई के हिसाब की किताब ही यमराज के दरबार में दर्ज होगी तो फिर वेईमानी, भ्रष्टाचार की कमाई क्यों करें। साथ तो केवलमात्र धर्म-कर्म का लेखा-जोखा जाना है। इसलिए जरूरी है कि हम ईमानदारी की कमाई करें और अपने उत्तराधिकारियों को भी छोड़ दें तो दान धर्म, कर्म में भी लगाएं, किसी का सहयोग भी करें ताकि उसका जीवन भी हमारे सहयोग से चलता रहे। अतः मायाजाल में रहते हुए भी हम माया, मोह, ममता से कोसों दूर रहें। वही सार्थक जीवन कहलाता है। मनुष्य-जीवन एक-दूसरे की सहायता के लिए दिया गया है।

कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः- अथर्ववेद, ७/५२/८ मेरा दाहिना हाथ काम करे सफलता बाएं हाथ में रहे। हमारे दाहिने हाथ कामधाम करते रहें और वाम हाथ में विजय सर्वत्र

सफलता ही प्राप्त करती रहे। इसलिए हम सत्कर्म करें दुष्कर्मों का परित्याग करदें। वर्तमान सामाजिक हत्याएं, आपराधिक घटनाओं से दूर रहें और भ्रष्टाचार, दुराचार तथा अनाचार जैसे दुष्कर्मों से सर्वथा दूर रहें। इसलिए हम विश्व-कल्याण एवं राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए, प्रेम व श्रद्धापूर्वक सदैव विश्व के हित एवं राष्ट्रीय प्रेम में भी अपना योगदान करते रहें। ताकि मनुष्य मानवता का शत्रु न बनकर मानवीय धर्म का पालन करता रहे और पशु- पक्षी भी प्राकृतिक हरीभरी गोद में अठखोलियां करते रहें और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी मानवीय संसाधनों की खोज भी होती रहे और हम सभी मिलकर भ्रातृभाव से इस सांसारिक जीवन की नैया पार लगाते रहें।

शं नः कुरु प्रजाभ्यः- यजु. ३६.२२

हमारी सन्तान का कल्याण हो और सभी सन्तानें कर्मशील रहें और नेतृत्व एवं प्रशासन हमारी सन्तानों के लिए राजकीय सुविधाएं प्रदान करता रहे। जो सन्तान जिस योग्य हो, अर्थात् जिस कार्य को कुशलता से कर सके, तदनुकूल उनको नौकरी व व्यापारिक संसाधनों में शासन- सत्ता की ओर से सहयोग एवं अनुकरण सहायता प्राप्त होती रहे। अतः प्रशासनिक सेवाएं अथवा कृषि बागवानी, तकनीकी कर्मशालाओं तथा व्यापारी धन्धों में सदैव सहयोग एवं सहायता भी मिलती रहे। उनकी कार्य-क्षमता के मुताबिक प्रजाजन सन्तानों को समय-समय पर काम करने का मौका मिलता रहे। तभी कहा है प्रजाजनों को सुख एवं धन-धान्य-समृद्धि को उत्तरोत्तर बढ़ाने का राज्य एवं केन्द्रिय सत्ता सुअवसर प्रदान करना ही नेतृत्व व शासन का कर्तव्य बन जाता है न कि अपनी ही वंश-परम्परा को बढ़ाने और राजनैतिक एवं आर्थिक तथा उद्योग व्यापार एवं ठेकेदारी प्रथा को बढ़ावा दिलवाने का नेता व अधिकारी भ्रष्ट तौर-तरीका नामी-बेनामी सम्पत्ति और कालाधन इकट्ठा करने का काम करता रहे। **रमन्तां पूण्या लक्ष्मीः मम गृहेः**- अथर्ववेद ७.११५.४ पुण्य की कमाई ही मेरे घर में हो। इसलिए कहा गया है कि ईमानदारी से कमाया हुआ धन-दौलत घर की शोभा बनकर श्रीमाता लक्ष्मी के रूप में अपनी चमक घर-द्वार पर बिखेरता है और मानवता को सन्देश भी देता है जो दीपावली त्यौहार की शोभा भी बनता है। जिस घर में माँ लक्ष्मी रूप धारण करके आती है, वह घर गृहस्थी लक्ष्मी माँ की कृपा से सुशोभित रहता है। क्योंकि लक्ष्मी चंचल है, एक गृह-द्वार पर सदैव ही टिकी नहीं रहती पुनरपि जहां पर लक्ष्मी का वास होता है वहां पर सुख-शान्ति एवं समृद्धि-सुख हमेशा बना रहता है इसलिए श्रीलक्ष्मी की उपासना-संसाधना भी आत्यावश्यक है, किन्तु इस का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाए कि नेक कमाई ही घर में लाई जाए। भ्रष्ट तौर-तरीके से की गई कमाई तो तमाम परिवार-जनों को भी परेशान रखती है।

-गौतम बिहार, टाण्डू, डा. घ. टाण्डू, तह. सदर,
जि. मण्डी (हि.प्र.) १७५००१

गीत

–डॉ. कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'

इतना छोटा मत कर मन को, सिर पर भार बने
करते रहो प्रयास सदा ही, अपना यार बने
क्यों घबराना जीवन पथ से
चलने ही जाना
जीते हुए जगत में रहना
लक्ष्य जिसे पाना
चलना होगा सपन संजोके, जीवन सार बने
इतना छोटा मत कर मन को, सिर पर भार बने
चाह जहां है राहें बनती
देखो अजमालो
समय सभी को अवसर देता
खुद को खुद ढालो
चीटी चलकर सबक सिखाती, खुद पतवार बने
इतना छोटा मत कर मन को, सिर पर भार बने
आँखों देखी भी हो जाती
झूठी कभी कभी
दोषी तो निर्दोष हो गया
होता ऐसा भी
आजादी का अर्थ जान लो, प्यार न खार बने
इतना छोटा मत कर मन को, सिर पर भार बने
हर पल को खुश होकर लेना
दामन भर-भर के
प्रेम दया 'अचूक' निधि आए
फिर से हर घर के
ऐसी हुई धारणा मन में, नए विचार बने
इतना छोटा मत कर मन को, सिर पर भार बने।

–३८-ए, विजय नगर, करतारपुरा, जयपुर-३०२००६। सचल भाष नं. ०९९८३८११५०६

■ ■ ■ ■ ■

नवयुग का निर्माण

–डॉ. केवलकृष्ण पाठक

जीवन को नियमित बना कर, नवयुग का निर्माण करें,
हृदये से सब की सेवा कर, राष्ट्र-चेतना का ही व्रत लें।
जियें स्वयं भी प्रसन्ता से, और सभी को जीने दें,
करें बुरा न कभी किसी का, बुरा करे जो तो दंड दें।
जाती-पाति और शहरी गांव का, भेद सदा को मिट जाये,
रिश्वतखोरी, चोरबाजारी का सब मिलकर अंत करें।

**- संपादक रवींद्र ज्योति मासिक, ३४३/१९, आनंद निवास, गीता कालोनी,
जींद १२६१०२ (हरियाणा) मोबा. ९४१६३८९४८१**

महाभारत की ऐतिहासिकता

–डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर'

महाभारत भारतीय संस्कृति का अद्भुत महाआख्यान है। १८ पर्वों वाले इस महाग्रन्थ में 'खिलपर्व' (हरिवंश पुराण) सहित लगभग एक लाख श्लोक हैं। इसीलिए इसके 'शतसाहस्री संहिता' भी कहा जाता है। इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा भी प्राप्त है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो कुछ भारत में है वह इसमें उपलब्ध है और जो यहां नहीं है वह कहीं भी नहीं है। इसमें हजारों कूट श्लोक हैं। इसके आख्यान बडे मनोहर हैं और तत्वज्ञान बड़ा गम्भीर है। इतिहास, धर्म, दर्शन, नीति, भूगोल, राजनीति और पुराणतत्व का जैसा समन्वय इस ग्रन्थ में उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें प्राचीन काल की अनेक ऐतिहासिक कथाएं एक ही स्थान में ग्रथित की गयी हैं। प्राचीनकाल में अश्वमेध आदि जो दीर्घ सत्र अथवा बहुत दिनों तक चलने वाले यज्ञ हुआ करते थे। उन यज्ञों में अवकाश के समय बहुत-सी ऐतिहासिक गाथाएं अथवा आख्यान कहने अथवा पढ़ने की प्रथा थी। ऐसे अवसरों पर पढ़े जाने वाले अनेक ऐतिहासिक आख्यान महाभारत में एकत्र किये गये हैं[१]।' इसकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। यह उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। महाभारतकार को हम अपने समय के सारे प्रश्नों और समस्याओं से जूझता और उनके समाधानपरक उत्तर तलाशता पाते हैं। 'इसके साथ भूगोल-इतिहास, राजनीति और धर्मानुशासन का विचित्र संयोग है। साथ ही सब वर्णन मर्यादा के अनुसार हैं। इसीलिए यह ग्रन्थ उत्कृष्ट महाकाव्य की गरिमा धारण करता है। महाकाव्य के सब गुणों से संयुक्त यह ग्रन्थ पृथ्वी के सब ग्रन्थों में अद्वितीय है। भाषा इसकी प्रौढ़ और गम्भीर है। सरलता और प्रौढ़ता का इसमें अद्भुत मेल है[२]।' ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत अद्वितीय महत्व रखता है। महाभारत को छोड़कर एक भी भारतीय ग्रन्थ नहीं जिसमें ब्राह्मणकाल से लेकर यूनानियों के आक्रमण तक की भारतीय संस्कृति का ज्ञान संपूर्णत: हो सके। ब्राह्मणग्रन्थों, पुराणों तथा सूत्रों में बिखरे हुए ज्ञान को महाभारत में एक स्थान पर मनोहरी शैली में ग्रथित कर दिया है। महाभारत की ऐतिहासिकता पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि यह जान लिया जाये कि क्या प्राचीन भारतीय इतिहास शब्द और उसके स्वरूप से परिचित है? इस प्रश्न का उत्तर हमें अथर्ववेद के मन्त्रों में मिल जाता है। वहां कहा गया है-

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्। तमितिहासश्च पुराणंच गाथाश्च, नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद[३]।

अर्थात् महत्वाभिलाषी पुरुष जब बृहतीम् (महत्व) की ओर चलता है तब इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी उसके अनुगामी बन जाते हैं।

१. महाभारत मीमांसा-चिन्तामणि विनायक वैद्य-पृ०-१

२. धर्मो रक्षति-आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृ०-३४९

३. अथर्ववेद- १५, ६, १०-१२

एवं इस बात को जो पुरुष जानता है वह इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी एवं वेद का प्रिय धाम (वास स्थान) बन जाता है।

यहां इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी चार शब्दों का प्रयोग है। चारों का स्वरूप एवं प्रकृति अलग-अलग है। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय वैदिक काल से ही इतिहास और उसके स्वरूप से परिचित थे। स्वयं महाभारतकार ने इतिहास के स्वरूप को बताते हुए कहा है-

धमार्थ-काम-मोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते[४]।

अर्थात् इतिहास वह विद्या है जिसमें प्राचीन इतिवृत्त के साथ-साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश हो। यही नहीं महाभारतकार इतिहास के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह भी कहता है-

इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम्[५]।

(इतिहास एक जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह का अन्धकार मिटाकर लोक के अन्तःकरण रूप सम्पूर्ण अन्तरंग गृह को भी भलीभांति प्रकाशित कर देता है)

स्पष्ट रूप से महाभारतकार इतिहास के महत्त्व से भलीभांति परिचित है, ऐसा समझा जा सकता है। अब महाभारत की अपनी ऐतिहासिकता पर विचार करें। आज ज्ञान की समग्रता पर विश्वास किया जाने लगा है। इतिहास, धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र नृतत्व विज्ञान, मनोविज्ञान और विज्ञान निकट आ रहे हैं। हर क्षेत्र में ज्ञान के नये आयाम तलाशे जा रहे हैं। इतिहास के सम्बन्ध में कहा जाने लगा है कि 'इतिहास तथ्यों का संकलन नहीं अपितु तथ्यों की व्याख्या है।' जी बैरेकली ने इतिहास को लेकर कहा है, ' हम जो इतिहास पढ़ते हैं, हालांकि वह तथ्यों पर आधारित है, ठीक-ठीक कहा जाये तो एकदम यथातथ्य नहीं है, बल्कि स्वीकृत फैंसलों का एक सिलसिला है[६]।' इस बदले हुए उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टिकोण में महाभारत की ऐतिहासिकता असंदिग्ध हो जाती है।

महाभारत के तीन रचनाकार हैं, तीन ही उसके नाम हैं और तीन स्थानों से उसका प्रारम्भ माना जाता है। तीन रचनाकार हैं- कृष्ण द्वैपायन व्यास, उनके शिष्य वैशम्पायन तथा सौति। तीन नाम हैं जय, भारत एवं महाभारत तथा मनु, आस्तिक एवं उपरिचर ये तीन उसके प्रारम्भिक स्थल हैं। इन तीनों की साक्षी स्वयं महाभारत देता हैं। 'जय' नाम का उद्घोष तो स्वयं मंगलाचरण में ही हो जाता है। मंगलाचरण है-

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्[७]।।

(नारायण को अर्थात् श्रीकृष्ण को तथा नरों में श्रेष्ठ जो नर अर्थात् अर्जुन, उसको नमस्कार करके और सरस्वती देवी को भी नमस्कार करके अनन्तर 'जय' नामक ग्रन्थ को पढ़ना चाहिए)

बड़ी कुशलता से व्यास ने इस मंगलाचरण में काव्य-नामक नर-नारायण (कृष्णार्जुन) काव्य-विषय उनकी 'जय' वाक्‌देवी को नमन तीनों को एक साथ गूंथकर ग्रन्थ का नाम जय भी बता दिया है।

४. महाभारत
५. वही, आदिपर्व- १/८७
६. हिस्ट्री इन चेंजिंग वर्ल्ड (१९५५), जी वैरेकली-पृ० १४
७. महाभारत आदिपर्व- १/१

मान्यता यह है कि महाभारत के कथानक में अनुस्यूत कूट श्लोक व्यास विरचित हैं जिनकी संख्या लगभग ८८०० है। बाद में वैशम्पायन ने इसके कलेवर में वृद्धि की तब 'इसका नाम' भारत हो गया, फिर उग्रश्रवा के पुत्र सौति ने इसमें उस काल तक प्रचलित सभी पुरावृत्त, और गाथायें जोड़ दीं तब यह बृहद् आकार और वर्तमान स्वरूप का 'महाभारत' ग्रन्थ बन गया।

किसी ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय चार बिन्दु विचारणीय होते हैं- (१) काल (२) पात्र (३) स्थान और (४) घटना।

१. महाभारत के काल को लेकर विद्वान् एकमत नहीं हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने व्यास को 'काल परिगणन' से मानव-जगत् का प्रथम इतिहासकार तथा प्रथम सम्पादक माना है[८]।' परंतु वे महाभारत का समय १५वीं शताब्दी ई०पू० मानते हैं।

२. महाभारत के भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, उद्योगपर्व, शल्यपर्व तथा अनुशासनपर्व के कुछ श्लोकों के आधार पर अध्यापक प्रबोध चन्द्र सेनगुप्त ने भारत युद्ध का काल ई०पू० २४४९ वर्ष निर्धारित किया है।

३. चालुक्य वंशीय राजा पुलकेशिन द्वितीय का एक शिलालेख दक्षिण के कलान्दी अर्थात् बीजापुर के ऐहोल स्थान के मेगुटी नामक एक जैनमन्दिर पर प्राप्त हुआ था। उसके अक्षर दाक्षिणात्य हैं। वह शिलालेख है-

त्रिशंत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वन्देषु पञ्चसु पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि मृजुजाम्।[९]

इन श्लोकों का अर्थ किया जाता है, 'भारत युद्ध से ३७३५ वर्ष बीत जाने पर जब कलि में शकों के ५५६ वर्ष व्यतीत हुए थे।'

श्री भगवद्दत्त ने इस सम्बन्ध में लिखा है 'हमें इस अर्थ में थोड़ा सन्देह है। फिर भी इससे इतना ज्ञात होता है कि शक संवत् ५५६ अथवा सन् ६३४ में भारत के दक्षिण के कई विद्वान् भारत युद्ध को ईसा से ३१०० वर्ष पहले मानते थे[१०]।'

४. सन् १९१२ में निधानपुर में मिले ताम्रपत्र में नरकासुर का पुत्र भगदत्त (जिसने महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से युद्ध किया था) तथा भगदत्त का पुत्र बज्रदत्त को बताया गया है। इनके ३००० वर्ष बाद का समय राजा पुण्यवर्मा का निर्धारित किया गया है। इस आधार पर पण्डित भगवद्दत्त जी ने महाभारत युद्ध का समय २७०० ई० पू० अनुमानित किया है।

चिन्तामणि विनायक वैद्य ने कुछ अन्य भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों द्वारा महाभारत-युद्ध का समय निर्धारित करने वाले मतों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार (१) स्व० मोड़क ने ज्योतिष व नक्षत्रीय गणना के आधार पर यह समय ५०००ई० पू० (२) कुछ ने ३१०१ ई०पू० (३) कुछ आर्यसमाजी विद्वान् वराह-मिहिर तथा कश्मीर के पण्डित कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार शक संवत् से २५२६ वर्ष पहले (४) रमेशचन्द्र मजूमदार एवं कुछ

८. प्राचीन भारत का इतिहास- डॉ० भगवतशरण उपाध्याय-पृ० १-२

९. ऐपिग्राफिया इण्डिका-भाग-३ पृ० ७

१०. भारतवर्ष का इतिहास- श्री भगवद्दत्त

पाश्चात्य विद्वान् यह समय १४००ई० पू० तथा (५) मद्रासी विद्वान् विलण्डी अय्यर महाभारत युद्ध का समय कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर १४ अक्टूबर ११९४ ई० पू० निर्धारित करते हैं[११]।' परन्तु आश्चर्यजनक यह है कि विद्वानों ने इस कालनिर्धारण में दो पुष्ट और अकाट्य प्रमाणों की उपेक्षा की है। वे हैं (१) युधिष्ठिर संवत् तथा (२) श्रीकृष्ण संवत्।

कालगणना में कल्प, मन्वन्तर और युगादि के बाद जो सर्वाधिक वैज्ञानिक इकाई है वह संवत् है। भारत में अनेक संवत् प्रचलित हैं। अनेक महान् ऋषियों और राजाओं के नाम से भी संवत् प्रचलित हैं इनमें प्रमुख संवत् १६ हैं- (१) कल्पाब्द (२) सृष्टि संवत् (१,९५,५८८५११३) (३) वामन (४) राम (५) श्रीकृष्ण (६) युधिष्ठिर (७) बौद्ध (८) महावीर-जैन संवत् (९) शंकराचार्य (१०) शालिवाहन (११) कलचुरी (१२) बलभी (१३) फसली (१४) विक्रम (१५) बंगला तथा (१६) हर्षाब्द

श्रीकृष्णसंवत् इस समय ५२४१ चल रहा है। इसी तरह युधिष्ठिर संवत् ५११६ चल रहा है।

'नवीन संवत् चलाने की शास्त्रीय विधि यह है कि जिस नरेश को अपना संवत् चलाना हो, उसे संवत् चलाने के दिन से पूर्व कम-से-कम अपने पूरे राज्य में जितने भी लोग किसी के ऋणी हों उनका ऋण अपनी ओर से चुका देना चाहिए[१२]।'

यहां एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण जब समकालीन थे तो इन दोनों संवतों में १३५ वर्ष का अन्तर क्यों है? इसका जो कारण हमारी समझ में आता है वह यह है कि श्रीकृष्ण ने अपने नाम से संवत् द्वारिका में अपना गणराज्य (अन्धकवृष्णिगण) भली प्रकार से स्थापित कर लेने के बाद स्वयं चलाया था। वैद्य जी के अनुसार उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था में कंस का वध कर दिया था। इसके उपरान्त उन्हें लगातार प्रतिवर्ष जरासंध के १७ आक्रमणों को झेलना पड़ा अर्थात् लगभग ३५-३६ वर्ष की अवस्था में वे द्वारिका पहुंचे। वहां द्वारिका बसाने और गणराज्य को व्यवस्थित करने में उन जैसे संगठन-कुशल व रण-कुशल व्यक्ति को ७-८ वर्ष लगे होंगे। ४५-५० की अवस्था में उनकी ख्याति सम्पूर्ण भारत में फैल चुकी थी तभी उन्होंने अपना संवत् प्रचलित किया। इसके पश्चात् ये ७०-७५ वर्ष और जिये और उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण घटनायें घटित हुईं। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद, यादवों का विनाश उन्हें अपनी आंखों से देखना पड़ा। युधिष्ठिर संवत् अर्जुन के पौत्र जनमेजय ने चलाया था। महाभारत के युद्ध के उपरान्त पाण्डव युद्ध तो जीत गये परंतु उसमें भयंकर महाविनाश हुआ। युद्ध के उपरान्त उन्होंने राज्याभिषेक तथा एक अश्वमेध यज्ञ भी कर लिया। परन्तु राज्य में अव्यवस्था व अराजकता फैल गयी। इसका कुछ प्रमाण महाभारत से ही मिल जाता है। श्रीकृष्ण निधन के बाद यादव-नारियों को अपनी अभिरक्षा में साथ ले जाते अर्जुन के सामने ही भीलों ने उन्हें लूट लिया था। यह पाण्डवों के राज्य की अराजकता और उनके घटते नियन्त्रण का प्रमाण है। फिर परीक्षित को राज्य सौंपकर वे हिमालय चले गये। परीक्षित के राज्य में नागों ने विद्रोह किया

---

११. महाभारत मीमांसा, पृ०-८९

१२. कल्याण- हिन्दू संस्कृति अंक-आलेख-हिन्दू संवत्, वर्ष, मास और वार-लेखक ज्योतिर्विद् पं० देवकीनन्दन खंडेलबाल-पृ० ७५६

(नागों और आर्यों के पारस्परिक विरोध के प्रमाण महाभारत में बिखरे पड़े हैं) और परीक्षित को मार दिया। फिर जनमेजय राज्याभिषिक्त हुआ। वह अत्यन्त प्रतापी सम्राट् था। उसने नागों पर सैन्य-अभियान किया उनकी बस्तियों को उजाड़ा तथा नाग-युवकों का जीवित अग्निदाह किया। नागों का पूरी तरह दमन करके फिर उसने बड़ा यज्ञ किया और उसी यज्ञ में 'युधिष्ठिर संवत्' चलाया। इस सारे घटनाक्रम में १३५ वर्ष का समय लगना स्वाभाविक है। इसीलिए श्रीकृष्ण संवत् और युधिष्ठिर संवत् में १३५ वर्ष का अन्तर दिखाई पड़ता है। हमारा मानना है कि इन दोनों संवतों से बड़ा महाभारत की ऐतिहासिकता का और कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

यों तो श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के नाम से प्रचलित संवत् ही उनको ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध करने वाले प्रमाण हैं। परन्तु ई०पू० चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा के यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने भी मथुरा द्वारिका यमुना तथा श्रीकृष्ण पूजा का उल्लेख किया है जो उस समय तक श्रीकृष्ण के भगवान् रूप में स्थापित हो जाने का प्रमाण है। डॉ० कनिंघम को वृष्णिराज्य (कृष्ण का वंश) की एक रजत मुद्रा मिली थी जो ब्रिटिश संग्राहालय लंदन में सुरक्षित है। गुरुकुल झज्जर के पास उच्चापिंड (सुनेत) नामक स्थान में वृष्णिगणराज्य की दस मुद्राएं और मिल गयीं जो गुरुकुल झज्जर में सुरक्षित हैं। इन मुद्राओं पर 'वृष्णि राजन्यगणस्य' अंकित है। इन पर हस्ति-सिंह, सुदर्शन चक्र, गदा, मूसल तथा शंख अंकित हैं[१३]।'

जहां तक स्थानों का प्रश्न है। पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आज भी स्थित है। इसका ऐतिहासिक अस्तित्व तमाम भारतीय ग्रन्थों से प्रमाणित है। पाण्डवों के किले को लेकर पुरातत्वविदों के शोध की आवश्यकता है। महाभारत युद्ध की घटना के सम्बन्ध में सभी भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषी उसको ऐतिहासिक घटना मानते हैं। यहां डॉ० भगवतशरण उपाध्याय का मत उद्धृत करना हमें समीचीन लगता है, 'महाभारत युद्ध की घटना के ऐतिह्य में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। परीक्षित जनमेजय और अन्य पाण्डवों के नाम अथर्ववेद और ब्राह्मणग्रन्थों में मिलते हैं। इसलिए उनकी ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। साथ ही उसका समय भी प्राचीन होना चाहिए क्योंकि राजा परीक्षित का नामोल्लेख अथर्ववेद तक में हुआ है। स्वयं राजा शान्तनु का नाम ऋग्वेद में मिलता है[१४]।'

इस लघु आलेख में विभिन्न विद्वानों के मतों की विस्तृत चर्चा सम्भव नहीं है। अतः हम निर्विवाद रूप से यह मानते हैं कि महाभारत एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। उसमें व्याप्त व अनुस्यूत कल्पनाओं व अतिरंजनाओं का आवरण हटाकर उसके भीतर के इतिहास तत्व को समझने-समझाने की आज महती आवश्यकता है।

-८६, तिलकनगर, बाईपास रोड, फिरोजाबाद-२८३२०३। फोन- ९२१९४१२१५९

१३. (अ) भारत सावित्री भाग-३, वासुदेव शरण अग्रवाल।
(ब) हिन्दू राज्यतंत्र-काशीप्रसाद जायसवाल-अनुवादक-रामचन्द्र वर्मा, पृ०-४३
१४. प्राचीन भारत का इतिहास- डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, पृ०-७१-७२

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमिविचार

–डॉ. सुधांशु कुमार षडङ्गी

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने सामाजिक परिपार्श्व को सुन्दर बनाने में सतत प्रयासरत रहता है और वह अपने निवासस्थान तथा स्वकीय परिपार्श्व के अन्तर्गत वापी, तड़ाग, उपवन आदि के निर्माण से परिवेश को सुरक्षित बनाता है। क्योंकि परिवेश की सुरक्षा से ही उसका जीवन सुखमय हो सकता है। 'गृह्णातीति गृहम्' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जो दूरस्थ प्राणी को भी अपनी ओर आकृष्ट करे उसको गृह कहते हैं। गृह प्राणियों के सुखप्राप्ति का स्थान है। अतः प्रत्येक प्राणी अपने आवासस्थान के लिए सतर्क रहता है। यह सर्वजनविदित है कि प्राणिमात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने योग्य निवास की व्यवस्था करता है। उसे अपने निवासयोग्य स्थान के लिए गुणों से युक्त उपयुक्त भूमि आवश्यक है। क्योंकि भूमि सदोष हो तो उस पर निर्मित निवास में विघ्न उपस्थित होते हैं। अतः अपने आवास के लिए भूमि एक प्रमुख घटकतत्त्व है।

गृहनिर्माण के लिए चाहे वह गृह पर्णशाला हो, मिट्टी का घर हो, ईंट का घर हो अथवा पत्थरों द्वारा निर्मित घर हो-उसके लिए भूमि का चयन आवश्यक है। यह चयन भूमि के गुण तथा दोष का विचार करके होना चाहिए। क्योंकि गृह-निर्माण जिस भूमि पर हो रहा हो उसे सर्वथा शुद्ध होना चाहिए।

भूमि के स्वरूप तथा प्रकार :-

वास्तुशास्त्रों में चारों वर्णों के लिए ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा भूमि की कल्पना की गयी है– कुश युक्त तथा सुगन्धित भूमि ब्राह्मणी भूमि है।[1] यह भूमि सब प्रकार के सुखों को देने वाली है। रक्त गन्ध वाली तथा मूंज युक्त भूमि क्षत्रिया भूमि कहलाती है। यह राज्य तथा प्रभुत्व को देने वाली है। मधु के समान गन्धवाली, कुश तथा काश से मिश्रित भूमि वैश्या भूमि कहलाती है। यह धनधान्य तथा भौतिक समृद्धि को देने वाली है। अनेक प्रकार के तृणों से युक्त तथा मद्य गन्ध वाली भूमि शूद्रा कही जाती है। यह भूमि सर्वथा त्याज्य है। इन भूमियों के आस्वाद से भी इनकी कोटी का ज्ञान किया जा सकता है। यदि भूमि के आस्वाद से मधुर रस की प्रतीति होती है, तो वह भूमि ब्राह्मणी भूमि कहलाती है। कषायरस की प्रतीति से क्षत्रिया भूमि, अम्लरस प्रतीति से वैश्या भूमि और तिक्तरस की प्रतीति होने पर शूद्रा भूमि जानी जाती है। भूमि के रूप से भी उसका स्वरूप जान सकते हैं। जैसे वशिष्ठ ने भी कहा है कि ब्राह्मणी भूमि सफेद वर्णवाली, क्षत्रिया भूमि लाल वर्णवाली, वैश्या भूमि पीले वर्णवाली और शूद्रा भूमि काले तथा मिश्रित वर्णवाली होती है।[2]

वास्तुशास्त्रों में गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, दैत्यपृष्ठ तथा नागपृष्ठ आदि भूमियों के विषय में विचार प्राप्त होता है। इनमें से दक्षिण, पश्चिम, नैऋत्य एवं वायव्य दिशा में ऊँचे आकार वाली भूमि को गजपृष्ठ भूमि कहा जाता है।[3] जिस भूमि का मध्यभाग विशेष ऊँचा हो और चतुःपार्श्व नीची भूमि हो वह कूर्मपृष्ठ भूमि है।[4] जिस भूमि के पूर्व, ऐशान्य तथा आग्नेय दिशा में ऊँचा और पश्चिम में नीचा प्रदेश हो, वह दैत्यपृष्ठ भूमि कही जाती है।[5] पश्चिम की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में ऊँची भूमि को नागपृष्ठ कहते हैं।[6] इन चारभूमियों में से गजपृष्ठ भूमि लक्ष्मी तथा आयु की वृद्धि कराती है। कूर्मपृष्ठ वाली भूमि प्रतिदिन उत्साह तथा धनधान्य की वृद्धि कराती है। दैत्यपृष्ठ वाली भूमि धन, पुत्र तथा पशुओं

१. कल्पद्रुम,
२. उद्धृत, बृहद्वास्तुमाला, का० ३३।
३. तत्रैव, का० ८२।
४. तत्रैव, का० ८४।
५. तत्रैव, का० ८६।
६ तत्रैव, का० ८८।

का विनाश करती है। नागपृष्ठ वाली भूमि निवासी के मन का उच्चाटन कर देती है। इसमें निवास करने से निवासी की मृत्यु, स्त्री हानि, पुत्र नाश और कदम-कदम पर शत्रुओं का भय बना रहता है। कहा गया है।[७]

सुगुण भूमि का विचार :-

नारायण भट्ट ने कहा है कि ब्राह्मण को उत्तर की ओर ढालयुक्त भूमि, क्षत्रिय को पूर्व की ओर ढालयुक्त भूमि, वैश्य को दक्षिण की ओर ढालयुक्त भूमि और शूद्र को पश्चिम की ओर ढालयुक्त भूमि श्रेयस्कर होती है-

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद्विप्राविकोऽग्योऽखिले।
नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिला कुर्युर्गृहं हृत्स्थितम्।।[८]

वास्तुशास्त्रों में कहा गया है कि जो भूमि पश्चिम में ऊँची और पूर्व में नीची, उत्तर की ओर ऊँची और दक्षिण की ओर नीची हो उसको यमवीथी कहते हैं। जो भूमि पूर्व में ऊँची और पश्चिम में नीची हो उसको जलवीथी कहते हैं। जो भूमि दक्षिण की ओर ऊँची तथा उत्तर की ओर नीची है वह गजवीथी है। जो भूमि ऐशान्य कोण की ओर ऊँची एवं नैऋत्य कोण की ओर नीची हो वह भूतवीथी भूमि है। जो भूमि आग्नेय कोण की ओर ऊँची तथा वायव्य कोण की ओर नीची भूमि हो वह नागवीथी भूमि है। जो भूमि वायव्य कोण की ओर ऊँची तथा आग्नेय कोण की ओर नीची भूमि है वह वैश्वानरी है। नैऋत्य कोण की ओर नीची तथा ऐशान्य कोण की ओर ऊँची भूमि धनवीथी कही जाती है। आग्नेय कोण के मध्य में ऊँची और पश्चिम तथा वायु कोण के मध्य में नीची भूमि को पितामहवास्तु कहते हैं। इस प्रकार की भूमि में वास करने से सुख की प्राप्ति होती है।[९] उत्तर, ऐशान्य कोण के बीच में नीची, नैऋत्य कोण तथा दक्षिण दिशा के मध्य में ऊँची भूमि को दीर्घायुवास्तु कहते हैं। यह भूमि उत्तम तथा वंश की वृद्धिकारक होती है। ऐशान्य कोण तथा पूर्व के मध्य नीची और नैऋत्य तथा पश्चिम दिशा के मध्य ऊँची भूमि को पुण्यकवास्तु कहा जाता है। यह भूमि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए सुखदायी होती है।[१०]

सदोष भूमि का विचार :-

पूर्व दिशा तथा आग्नेय कोण के मध्य में नीची और वायव्य कोण तथा पश्चिम की ओर ऊँची भूमि को अपथवास्तु कहा जाता है। यह भूमि कलह करवाती है। आग्नेय कोण तथा दक्षिण के मध्य नीची और वायव्य कोण तथा उत्तर दिशा के मध्य ऊँची भूमि को रोगकरवास्तु कहा जाता है। यह भूमि नानादि रोगों को उत्पन्न करती है। नैऋत्य कोण तथा दक्षिण दिशा के मध्य नीची और ऐशान्य कोण तथा उत्तर दिशा के मध्य ऊँची भूमि को अर्गलवास्तु कहा जाता है। ऐशान्य कोण तथा पूर्व के मध्य ऊँची और पश्चिम दिशा तथा नैऋत्य कोण में नीची भूमि को श्मशानवास्तु कहा जाता है। यह भूमि कुल का नाश करने वाली होती है।[११]

आग्नेय कोण में नीची, नैऋत्य, ऐशान्य तथा वायव्य कोण में ऊँची भूमि को शोकवास्तु कहा जाता है। यह भूमि सम्पत्तिनाशक तथा मृत्युकारक होती है। ऐशान्य, आग्नेय कोण तथा पश्चिम में ऊँची और नैऋत्य कोण में नीची भूमि को श्वमुखवास्तु कहते हैं। यह भूमि निवासकर्ता को दरिद्र बना देती है। नैऋत्य, आग्नेय तथा ऐशान्य कोण में ऊँची तथा पूर्व दिशा, वायव्य कोण में नीची भूमि को ब्रह्मघ्नवास्तु कहते हैं। यह कृषियोग्य भूमि है। आग्नेय कोण में ऊँची और नैऋत्य, ऐशान्य तथा वायव्य कोण में नीची भूमि को स्थवरवास्तु कहते हैं। यह भूमि हर प्रकार से शुभ होती है। नैऋत्य कोण में ऊँची तथा आग्नेय, वायव्य तथा ऐशान्य कोण में नीची भूमि को स्थण्डिलवास्तु कहते हैं। यह स्थिरता देने वाली भूमि है। ऐशान्य कोण में ऊँची और आग्नेय, नैऋत्य तथा वायव्य कोण में नीची भूमि को

---

७. बृहद्वास्तुमाला, का० ८३, ८५, ८७ और ८६।
८. तत्रैव, का० ४०।
६. तत्रैव, का० ४६, ४७।
१०. तत्रैव, का० ४६, ५०।
११. तत्रैव, का० ५४।

शाण्डुलवास्तु कहा जाता है। यह भूमि सर्वथा निवासयोग्य नहीं है। पूर्व की ओर ढाल वाली भूमि धनधान्य की वृद्धि कराने वाली पश्चिम दिशा की ओर ढाल वाली भूमि अर्थनाश कराने वाली, दक्षिण दिशा की ओर ढाल वाली भूमि गृहस्वामी के मृत्यु का कारण होती है।[१२]

कहा गया है कि पूर्व दिशा में ऊँची भूमि हो तो वह पुत्रनाशकारी होती है। आग्नेय कोण में नीची भूमि हो तो वह धननाश कराती है। दक्षिण दिशा में ऊँची भूमि हो तो वह स्वास्थ्यप्रद होती है। नैर्ऋत्य कोण में ऊँची भूमि हो तो वह धनधान्य देने वाली होती है। पश्चिम दिशा में ऊँची भूमि पुत्रप्रदा होती है। वायव्य कोण में ऊँची भूमि द्रव्यहानि कराती है। उत्तरदिशा में ऊँची भूमि हो तो वह आरोग्य प्रदान करती है। तथा ऐशान्य कोण में यदि ऊँची भूमि हो तो वह क्लेश को देने वाली होती है। वास्तुप्रदीप के अनुसार फटी हुई, शल्ययुक्त, दीमकों से व्याप्त और ऊँची-नीची भूमि को भवन निर्माता दूर से छोड़ दे, ऐसी भूमि आयु एवं धन का नाश करती है। चक्राकार भूमि दरिद्रता देने वाली है। त्रिकोणाकार भूमि राजभय को देने वाली, दण्डाकार भूमि पशुसम्पदा का नाश करने वाली, सूप के आकार वाली भूमि गायों का नाश करने वाली, गाय, हाथी आदि बाँधने वाली भूमि पीड़ा देने वाली तथा धनुषाकार भूमि भयोत्पन्न कराने वाली है।[१३] अतः इन भूमियों में निवास नहीं करना चाहिए।

वर्णानुसार भूमि चयन :-

आग्नेय, नैऋत्य तथा ऐशान्य कोण में ऊँची तथा वायव्य कोण में नीची भूमि को सुस्थानवास्तु कहते हैं। यह भूमि ब्राह्मणों के लिए सुखकर होती है। पूर्व दिशा में नीची और नैऋत्य तथा वायव्य कोण और पश्चिम दिशा में ऊँची भूमि को सुतलवास्तु कहा जाता है। यह भूमि क्षत्रियों के लिए सुखकर होती है। उत्तर दिशा, ऐशान्य तथा वायव्य कोण में ऊँची तथा दक्षिण दिशा में नीची भूमि को चरवास्तु कहा जाता है। यह भूमि वैश्यों के लिए सुखकर है। पश्चिम दिशा में नीची और पूर्व दिशा, ऐशान्य तथा आग्नेय कोण में ऊँची भूमि और नैर्ऋत्य कोण में नीची भूमि को श्वमुखवास्तु कहते हैं। यह भूमि शूद्रों के लिए हितकारी है।

जिस भूमि पर उत्तर दिशा की ओर जल बहता हो, कुश उगे हों और घृत के गन्ध जैसे प्रतीति हो रही हो तो वह भूमि ब्राह्मणों के योग्य होती है। जिस भूमि पर पूर्व दिशा की तरफ जल बहता हो, कुश उगे हों और मिट्टी रक्तवर्ण वाली तथा रक्त की गन्ध आ रही हो तो वह भूमि क्षत्रियों के लिए उत्तम है। जिस भूमि पर दक्षिण दिशा की ओर जल बहता हो, कुश उगे हों तथा अन्न की सी गन्ध प्रतीत होती हो, तो वह भूमि वैश्यों के लिए उत्तम होती है। जिस भूमि पर पश्चिम दिशा की ओर जल बहता हो, दूब उगी हो तथा वहाँ से मद्य की गन्ध आ रही हो, तो वह भूमि शूद्रों के लिए सुखदायी है।[१४]

वराहमिहिर के अनुसार उत्तम औषधि, वृक्ष, लता वाली मधुर चिकनी, सुगन्धित, समतल, परिश्रम को दूर करने के प्रभाववाली भूमि गृहस्वामी को धन, सुख तथा शान्ति देती है।[१५] जिस भूमि के दोनों भुज समान हों और चारों कोण सम हों-ऐसी आयताकार वाली भूमि पर निवास सर्वसिद्धिप्रद है। लम्बाई और चौडाई समान वाली चतुरस्र भूमि पर निवास करने से धन का लाभ होता है। वृत्ताकार वाली भूमि बुद्धि की वृद्धि कराती है।[१६]

अतः मानव की जिस भूमि पर पहुँचते ही मन और आँख प्रसन्न हो उसे ऐसी ही भूमि पर गृह का निर्माण करना चाहिए। अतः मानव के कल्याण के लिए वास्तुशास्त्रज्ञों ने उसके अनुकूल गृह निर्माण के लिए भूमि के चयन को सर्वोपरि रखा है। इसलिए मानव उत्तमभूमि का चयन कर उस पर मनोहर गृह का निर्माण कर शान्तमय जीवनयापन करें।

-सहाचार्य, विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान
पञ्जाब विश्वविद्यालय, साधु आश्रम, होशियारपुर, पञ्जाब।

१२. तत्रैव, का० ४१, ४२। १३. तत्रैव, का० ६२, ६३। १४. बृहद्वास्तुमाला, का० ६५ से ६८।
१५. उद्धृत, तत्रैव, का० ७८। १६. तत्रैव, का० ६०।

श्री गुरु गोबिन्दसिंह - एक दिव्य महापुरुष

-डॉ. रीना तलवाड़

सिक्ख-पंथ के इतिहास में दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह का अद्वितीय स्थान है। वे एक सैनिक या राजनैतिक नेता ही नहीं थे बल्कि एक दिव्य महापुरुष भी थे। वे उच्चकोटि के संगठनकर्त्ता एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे सहृदय मानव, निर्भीक योद्धा, कुशल सैनिक, नेता, महान् विद्वान्, साहित्यकार तथा उच्चकोटि के अध्यात्मवादी थे। कनिंघम लिखते हैं - **गुरु साहिब ने एक पराजित कौम की सोई हुई शक्तियों को जगाया तथा उनमें सामाजिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय उत्थान की इच्छा पैदा कर दी।** पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में- **तिलक और जनेऊ की रक्षा के लिए उनकी तलवार सदा खुली रहती थी।**[1] गुरु जी ने सिक्खों के भीतर जातीयता की भावना विकसित कर शक्तिशाली बनाया।[2]

पं० जवाहरलाल नेहरू के कथनानुसार 'दसवें और अन्तिम गुरु गोबिन्दसिंह थे। उन्होंने सिक्खों को एक शक्तिशाली क्षत्रियजाति बना दिया जिसका मुख्य उद्देश्य दिल्ली के बादशाह का सामना करना था।[3]

आज भौतिकवाद एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावाधीन युवा-पीढ़ी धर्म-सुधारक गुरु गोबिन्दसिंह के उपदेशों को भूल चुकी है। राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रसेवा के अग्रदूत गुरु गोबिन्दसिंह ने राष्ट्र पर कुरबानी का पाठ पढ़ाने से पहले स्वयं अपने पिता एवं चार पुत्रों की कुरबानी दी। उनकी शिक्षाएँ आज की भयावह स्थिति में सशक्त भारत का निर्माण करने में सक्षम हैं।

महान् धर्म-सुधारक - गुरु गोबिन्दसिंह जी धर्म-रक्षा एवं धर्म-सुधार के अवतार थे। गुरु जी ने स्वयं 'विचित्र नाटक' में अपने जन्म धारण तथा कर्त्तव्य का कारण बताया-

हम इह काज जगत मो आए।
धर्म हेतु गुरु देव पठाए।
जहां तहां तुम धरम बिथारो।
दुष्ट दोखीअन पकरी पछारो।।४२।।
यही काज धरा हम जनम।
समझ लेहु साधु सब मनम।
धरम चलावन सन्त उबारन।
दुष्ट सभन को मूल उपारन।।४३।।[4]

गुरु गोबिन्दसिंह फरमाते हैं कि अकालपुरुष ने उन्हें धर्म की रक्षा के लिए इस जगत् में भेजा। साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों का संहार करना उनका एकमात्र कर्त्तव्य है। गुरु जी धर्मात्मा तथा धर्मावतार थे जिन्होंने अंतिम सांस तक धर्म की रक्षा की।

बलिदान की मूर्ति- गुरु गोबिन्दसिंह जी का सारा जीवन आत्म-बलिदान की एक लम्बी दास्तां है। ९ वर्ष की आयु में उन्होंने अपने पिता गुरु तेग़ बहादुर साहिब को आत्म-बलिदान के लिए उत्साहित किया। उनके दो पुत्रों को सरहिन्द की दीवार में चिनवा दिया गया। उनकी माता जी इस दु:ख को सहन न कर सकीं और मृत्यु की गोद में चली गईं। उनके अन्य दो पुत्र चमकौर साहिब की लड़ाई में वीरगति को प्राप्त

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ३०७
२. शुक्ल, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृ. ४९
३. विश्व इतिहास की झलक, पृ. ४५५
४. दशम ग्रंथ, पृ. ५७-५८

हुए। उनकी बहुत-सी साहित्यिक सामग्री सरसा नदी में बह गई। उन्होंने माछीवाड़ा के जंगलों में भी अनेक कष्ट सहे। परन्तु वे अपने उच्च आदर्शों एवं जीवनपथ से विचलित न हुए।

उच्चकोटि के सैनिक संगठनकर्त्ता- गुरु गोबिन्दसिंह जी एक वीरयोद्धा, साहसी सैनिक तथा उच्चकोटि के सैनिक संगठनकर्त्ता थे। खालसा-पंथ की स्थापना उनके उच्चकोटि के संगठनकर्त्ता होने का प्रमाण है। वे विपत्तियों में भी अपना संतुलन न खोते थे। दृढ़ निश्चय, उद्देश्य और लगन, उनकी सफलता के मुख्य कारण थे। डॉ. बैनर्जी उनके सम्बन्ध में लिखते हैं कि- **वे उच्चकोटि के निर्माता थे।** लतीफ के अनुसार- **उनमें एक धार्मिक नेता तथा योद्धा के गुणों का सम्मिश्रण था। वे गुरुगद्दी पर एक न्यायदाता, रणक्षेत्र में एक सेनानायक, मसनद पर बैठे एक बादशाह तथा खालसा-संगत में एक फकीर थे।**

सच्चे कर्मयोगी- भागवान् कृष्ण की भान्ति गुरु गोबिन्द जी भी सच्चे कर्मयोगी थे। उनके व्यक्तित्व तथा व्यवहार में गुरु नानक देव जी का धर्म-दर्शन था कि एक सच्चा योगी वही है जो गृहस्थजीवन का पालन करता हुआ भी सांसारिक पापों से स्वयं को मुक्त रखे। गुरु जी ने कृष्णावतार में लिखा है कि उनका जीवन धन्य है जिनके मुख में हरि (ईश्वर) का नाम है और मन में युद्ध लड़ने का विचार है।

महान् धर्म-प्रचारक- गुरु जी ने सिक्खों को यह आदेश दे रखा था कि वे प्रात: स्नान करके गुरुवाणी का पाठ तथा नाम का सिमरन करें। खालसा को उन्होंने सदाचारी तथा पवित्र जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया था। उन्होंने सिक्खों को आदेश दिया कि उनके बाद वे आदिग्रंथ को ही गुरु मानें। उन्होंने खण्डे का पाहुल तैयार करके अमृत छकने की प्रथा चलाई। वे सिक्ख-धर्म और परमात्मा की भक्ति में लीन एक महान् आत्मा थे। विचित्र नाटक में उन्होंने कहा है कि ''मेरी किसी से शत्रुता नहीं परन्तु मैंने जुल्म और अत्याचार के विरुद्ध हर तरह से लड़ने का निश्चय कर लिया है।''

उच्च जीवन आदर्श- गुरु साहिब का जीवन-आदर्श बहुत उच्च था। उन्होंने राजनैतिक अत्याचार, धार्मिक अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने फरमाया था कि ''सवा लाख से एक लड़ा कर ही मैं गोबिन्दसिंह नाम कहलाऊं।'' चिड़ियों से बाज तुड़वा कर ही मैं गोबिन्दसिंह नाम को सार्थक करूंगा।'' वे एक जगह फरमाते हैं ''हे शिवा (भगवान्) मुझे ऐसा वरदान दो कि मैं शुभ कर्मों से कभी पीछे न हटूं।''[५]

प्रजातंत्र के पक्षपाती- गुरु साहिब सामंतवादी परम्पराओं के विरोधी तथा प्रजातंत्र के पक्षपाती थे। उन्होंने पहले पांच प्यारों को अमृत छकाया तथा बाद में उनके हाथ से अमृत पान कर आप ही गुरु तथा आप ही चेला की पुष्टि कर दी। वे तो पांच प्यारों को अपने से भी ऊंचा समझते थे। पांच प्यारों का हुक्म वे कभी नहीं टालते थे। उनके अनुसार संगत का फैसला ही 'गुरु मत' या परमात्मा का फैसला होता है। उनकी इस विचारधारा ने ही बाद में 'गुरुमत्ता' की संस्था को जन्म दिया।

महात्यागी- त्याग की भावना तो सिक्ख-गुरुओं के जीवन का अंग था। दौलतराय के अनुसार 'गुरु गोबिन्दसिंह सच्चे त्यागी और निष्काम देश-भक्त थे। कृष्ण तथा भीष्म ने महाभारत में उपदेश दिया है कि सबसे बड़ा त्यागी वह होता है जो

---

੫ ਦੇਹਿ ਸ਼ਿਵਾ ਬਰ ਮੋਹਿ ਇਹਿ ਸ਼ੁਭ ਕਰਮਨ ਤੇ ਕਬਹੂੰ ਨਾ ਟਰੋਂ।

दूसरों की भलाई के लिए रणभूमि में प्राणों का विसर्जन करता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने दूसरों के लाभ के लिए न केवल अपने प्राणों को त्यागा बल्कि सब कुछ जो अपना था वह देश-भक्ति में लगाया।[६] गुरु जी ने अपनी सन्तान को न्योछावर कर गुरु अर्जुन देव जी की वाणी को सार्थक किया-

जिसकी वसतु तिसु आगे रखै।
प्रभ की आगिआ माने माथे।।[७]

राष्ट्रनायक - गुरु जी ने सदा राष्ट्र के शत्रुओं के विरुद्ध शस्त्र उठाए। उनका सामना तो अत्याचार से था न कि किसी व्यक्ति जाति या धर्मविशेष से। उन्होंने गीताज्ञान को भारतवासियों के हृदय में जागृत किया। गुरु गोबिन्दसिंह जी ने मानवहृदय को अपने सद्कार्यों द्वारा जीता और इसीलिए वे अब तक सिक्खों के हृदय में प्रत्यक्षरूप से विद्यमान हैं।[८]

साहित्य स्रष्टा- गुरु जी तलवार के धनी थे, साथ ही वे कलम के भी धनी थे। जहां उन्होंने समाज-सेवा तथा राष्ट्र-सेवा की, वहाँ उनकी साहित्यसेवा भी सराहनीय है। रायबहादुर पं० सुखदेव बिहारी के मित्र के अनुसार- 'साहित्य की दृष्टि से आप की रचना सब गुरुओं की रचनाओं से उच्चतर हैं।[९]

धर्मावतार - गुरु गोबिन्दसिंह जी धर्मात्मा तथा धर्मावतार थे जिन्होंने अंतिम सांस तक धर्म की रक्षा की। भाई सन्तोख सिंह लिखते हैं -

सतियुग बावन सरूप हवै न उपजाति
बलि कर जगय सुरपुरि देत बसातो।
भनति संतोख सिंघ त्रेते जे न रामचन्द्र,
रावन को राज रहे केऊ न विनासते।
द्वापुरि में श्यामघन होते न करति कौन,
दोखनि को दुख,सुख संतन के वासते।
तैसे कली काल महि गुरु रूप होवति न,
कौन हिंदवानो राखि धर्म को प्रकाशते।[१०]

जिस तरह सतियुग में ईश्वर ने बामन का रूप धारण कर राजा बलि को सीमा बतलायी। त्रेता- युग में रामचन्द्र ने रावण का अन्त किया। द्वापर में श्रीकृष्ण ने दोषियों का संहार कर सन्तों एवं सज्जनों को सुख दिया। उसी प्रकार कलियुग में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए जन्म लिया।

निष्कर्ष :- गुरु गोबिन्दसिंह की तेजस्विता से कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। परन्तु जिस ज्योति को उन्होंने प्रज्वलित किया वह आज भी जल रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि वीर सैनिक ही नहीं बल्कि आम भारतीय भी गुरु जी के महान् व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण कर भारत को सशक्त राष्ट्र बनाने का यत्न करे।

आज की युवा पीढ़ी को गुरु की वाणी को अपने जीवन में धारण करने की आवश्यकता है-

देह सिवा वर मोही इहै,
सुभ करमन ते कबहूं न टरों।
न डरो अरि सो जब जाए लरों,
निसचे कर अपनी जीत करों।[११]

-संस्कृत विभाग, शान्ति देवी आर्य महिला महाविद्यालय, दीनानगर (पंजाब)।

६. सवानेह उमरी गुरु गोबिन्द सिंह, पृ. २२४-२२५
७. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. २६८
८. नरेन्द्रपालसिंह- व्हाट मेक्स गुरु गोबिन्द सिंह अनफरगेटेबल, पृ. ४
९. भारतीय साहित्य पर हिन्दी का प्रभाव, पृ. २३५
१०. गु. प्र.सू., पृ. ५७३३
११. दशमग्रंथ- पृ. ९९

सब प्रकार से सुन्दर ही सुन्दर- सुन्दरकाण्ड

–डॉ० अर्चना रानी वालिया

सन्त तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस में वैसे तो समस्त काण्डों का वर्णन-सौन्दर्य, चरित्र-सौन्दर्य, लीला-सौन्दर्य सब कुछ सुन्दर है, किन्तु सुन्दरकाण्ड में 'यथा नाम तथा गुण' वाली उक्ति अक्षरश: सार्थक सिद्ध होती है। चारित्रिक, वर्णनात्मकता, घटनाक्रम की दृष्टि से तो यह काण्ड अनूठा है ही, इसके अतिरिक्त माता सीता का उदात्त चरित्र, हनुमान् जी की कर्त्तव्यनिष्ठा और पराक्रम, विभीषण की शरणागति, श्रीराम का सात्त्विक कोप-सब कुछ अद्भुत और अद्वितीय है। सुन्दरकाण्ड किसी घटना-विशेष से नामित नहीं है अपितु यह उद्देश्य-प्रधान काण्ड है जिसमें वर्णित घटनाओं से आगे की कथा का विस्तार है। अत: यह काण्ड श्रीरामकथा को आगे न ले जाने में सहायक है।

सुन्दरकाण्ड में महावीर हनुमान् जी द्वारा समुद्र लांघ कर माता सीता की लंका में खोज करने का वर्णन किया गया है, किन्तु इस सुन्दरकाण्ड के नायक हैं महावीर हनुमान्। इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यों रखा गया? यह विचारणीय प्रश्न है? क्योंकि रामचरितमानस के अन्य सभी काण्ड घटना या स्थान विशेष के द्वारा सन्दर्भित एवं नामित किए गए हैं, जैसे-बालकाण्ड में श्रीराम जन्म, बाल-लीला, विवाह आदि के प्रसंग तथा अयोध्याकाण्ड में अयोध्या में घटित घटनाओं का वर्णन, अरण्य और किष्किन्धाकाण्ड भी स्थान विशेष पर आधारित नाम हैं। लंकाकाण्ड लंका में घटित राम-रावण के युद्ध से सम्बन्धित है। किन्तु सुन्दरकाण्ड इन सबसे भिन्न है।

'सुन्दरकाण्ड' में सुन्दर शब्द के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों एवं संतों का अलग-अलग मत है, कुछ विद्वान् इष्ट-सम्प्राप्ति या उद्देश्य-सम्पूर्ति के आधार पर सुन्दर शब्द का समर्थन करते हैं। लंकापुरी त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई थी, जो तीन शिखरों वाला पर्वत है- नील शिखर जिस पर लंका स्वर्णपुरी बसी थी, सुबेल पर्वत जहां युद्ध मैदान था और सुन्दर शिखर जहां अशोक वाटिका थी। रावण ने सीता जी को इसी वाटिका में रखा था जहां किसी का भी प्रवेश वर्जित था। इस वाटिका में सब कुछ सुन्दर ही सुन्दर था, जैसे-वृक्ष, लता, बेल, बिटप आदि। अशोक के वृक्षों की गहन छाया थी, जिससे इसे अशोकवाटिका कहा गया। अत: इस काण्ड का नामकरण जहां इष्ट सम्प्रातिरूप सुन्दर कार्य सम्पन्न होने के कारण हुआ, वहां सुन्दर शिखर पर शोभायमान अशोकवाटिका के कारण सुन्दरकाण्ड किया गया।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान् जी माता सीता की खोज के लिए लंका जा रहे हैं। हनुमान् जी को अपनी क्षमताओं का पता नहीं था। हनुमान् जी को जब जामवन्त जी उनकी शक्ति का स्मरण कराते हैं तब हनुमान् जी दृढ़ निश्चय, मनोबल और उत्साह के साथ प्रबल वेग से महासागर को पारकर, लंकापुरी की सुदृढ़ व्यवस्था को भंग कर, माता सीता को खोज कर, लंकापुरी में अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर वापस भगवान् श्रीराम के

पास वापस आ जाते हैं। सुन्दरकाण्ड नाम होने का यही रहस्य है। व्यक्ति की क्षमताएं अनेक हैं। वह बहुत बड़ी सम्भावनाओं का पुंज है किन्तु उसे अपनी शक्तियों का अहसास नहीं होता। जब उसे अपनी शक्ति का ज्ञान होता है, तब वह अन्दर की शक्ति से उमंग, उत्साह की प्रतिमूर्ति बन जाता है, सफलता उसका इंतजार करती है।

हमें विकट परिस्थितियों में भी निराश नहीं होना चाहिए। आगे बढकर सफलता कैसे अर्जित की जा सकती है? इस पर हमें विचार करना चाहिए। हनुमान् जी जब माता सीता की खोज में चल पड़ते हैं तब मैनाक पर्वत हनुमान् जी से विश्राम कर अपनी पूजा ग्रहण करने की प्रार्थना करता है तो हनुमान् जी कहते हैं कि मेरे कार्य मुझे शीघ्रता करने को कह रहे हैं। मैंने वानरों के समीप प्रतिज्ञा ली है कि मैं बीच में कहीं भी नहीं ठहरूंगा–

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम।

हनुमान् जी का उत्तर सफलता की कुंजी के लिए एक सिद्धान्त बन कर उभरता है। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि यदि कार्य दुष्कर है और कोई सहयोगी भी नहीं है, तो हमें धैर्यवान् रहकर निरन्तर आगे बढ़ना चाहिए। कठिनाइयां, निराशा, हताशा भी मिलेगी, आत्महत्या के विचार भी आ सकते हैं। लेकिन हमें इन सबसे उबर कर निकलना होगा। इन सबसे उबरने के लिए ही सुन्दरकाण्ड जीवन का सौन्दर्य दर्शन है।

इस काण्ड में सुन्दर शब्द का आठ बार प्रयोग भी अपनी विशेषता से भरा हुआ है। १. सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर। २. कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना। ३. स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। ४. राम नाम अंकित अति सुन्दर। ५. लागि देखि सुन्दर फल रूखा। ६. लागे कहन कथा अति सुन्दर। ७. सगुन भए सुन्दर सुभ नाना। ८. सहज कृपन सन सुन्दर नीती।

सुन्दरकाण्ड एक आशीर्वादात्मक काण्ड है। अत: भक्ति, भगवत्कृपा एवं भगवत्प्रीति प्राप्त करने का यह सहज मार्ग बतलाता है। इस काण्ड में हनुमान् जी को चार-चार बार आशीर्वाद मिला है।

१. सुरसा द्वारा –

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।।

२. लंकिनी द्वारा –

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।।

३. माता सीता द्वारा –

अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।

४. राम द्वारा –

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखउँ करि विचार मन माहीं।।

श्री हनुमान् द्वारा मांगा गया आशीर्वाद–

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी।।

इस पर श्रीराम केवल 'एवमस्तु' ही कह पाये। विभीषण की शरणागति इस काण्ड की अन्य सुन्दरता है। तम का सत् के प्रति आत्मसमर्पण है। सुन्दरकाण्ड विचारप्रधान, कर्मप्रधान और पराक्रमप्रधान है। हनुमान् जी ने अनेक बार विचार किया, फिर कार्य किया। वाटिका- विध्वंस कर्मप्रधान तथा लंकादहन पराक्रमप्रधान है। विचारपूर्वक किया हुआ कार्य ही सफल होता है।

यह भी सुन्दरकाण्ड का एक सन्देश है। इस काण्ड में भगवान् श्रीराम ने मन की निर्मलता को अधिमान देते हुए कहते है -

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

भगवान् को निर्मल मन ही प्रिय है। यहाँ, कपट, छल और छिद्र ? ये तीन शब्द आये हैं जो कि क्रमश: तन, मन और आचरण से सम्बन्धित है। कपट मानसिक है जो रावण के मन में था, छल आचरण या तन से, जो मारीच ने किया था और छिद्र चरित्र-दोष जो सूर्पनखा में था। एक अन्य विचारणीय बात यह है कि सभी काण्ड मंगलाचरण के पश्चात् दोहे से प्रारम्भ हैं, किन्तु सुन्दरकाण्ड का प्रारम्भ चौपाई से हुआ है-

जामवंत के वचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

सुन्दरकाण्ड के मंगलाचरण भी बहुत सुन्दर हैं। प्रथम मंगलाचरण में श्रीरामवन्दना व उनकी सोलह विशेषताएं, दूसरी वन्दना तुलसीदास जी ने नि:स्पृह भक्ति की याचना करते हुए, तीसरे मंगलाचरण में अतुलितबलधाम श्री रामदूत की शरणागति मांगी है। हनुमान् जी का प्रत्येक कार्य भगवत्-स्मरण के साथ ही प्रारम्भ हुआ है। कई जगह मनोवैज्ञानिक सत्य भी प्रकट हुए हैं, जिस कार्य को हर्षोल्लास के साथ किया जाता है, उसमें निश्चित सफलता प्राप्त होती है। सुन्दरकाण्ड में अनेक स्थलों पर मनोवैज्ञानिक तथ्य वर्णित हुए हैं-

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।

सीता जी ने अपने नेत्रों से अपने चरणों पर ही दृष्टि गड़ायी हुई थी, किन्तु उनका ध्यान श्रीराम के चरण कमलों में लगा हुआ था, यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है क्योंकि किसी कार्य में संलग्न व्यक्ति जब तक कार्य पूरा नहीं हो जाता तब तक अपनी स्वयं की सुध भूला रहता है -

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देखि सुन्दर फल रूखा।।

हनुमान् जी की जब सीता जी से भेंट हो गयी अर्थात् उन्हें सौंपा गया कार्य जब पूरा हो गया तब उन्हें भूख का स्मरण हो आया-

जौं न होति सीता सुधि पाई।
मधुबन के फल सकहिं कि खाई।।

जब विशेष उत्साह होता है तो व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्नता में कुछ अमर्यादित कार्य भी कर बैठता है। लंका से लौटने पर जब हनुमान् जी मधुबन के फल तोड़फोड़ कर खाने लगे तो सुग्रीव समझ गये कि अवश्य ही हनुमान् जी सीता माता की सुध लेकर ही लौटे हैं अन्यथा ऐसा उपद्रव नहीं कर सकते थे।

सुन्दरकाण्ड में राजनीति, नीतिशास्त्र, व्यवहारशास्त्र तथा समाज-नीति एवं व्यवहार-नीति का उचित उपयोग किया गया है। राजनीति के क्षेत्र में -

१. नीति बिरोध न मारिअ दूता।।

२. सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।

शत्रुपक्ष के किसी व्यक्ति को अपने में मिलाकर दलबदल करा देना यह भी राजनीति की एक चाल होती है। श्री हनुमान् जी ने विभीषण को श्रीराम के पक्ष में लाकर राजनीतिशास्त्र का उचित प्रयोग किया। परिवार की मर्यादा का विभीषण ने जिस तरह पालन किया, वह सहनशीलता का अनूठा परिचय देते हैं-

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।
अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई।।
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।

व्यवहार-नीति के क्षेत्र में-

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति।
सहज कृपन सन सुन्दर नीति।।
ममता रत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी।।

विभीषण रामभक्त थे, प्रात: उठकर रामनाम का स्मरण करते थे, किन्तु हनुमान् जी ने देखा कि केवल रामनाम लेना ही पर्याप्त नहीं अपितु राम का काम करना भी जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। इस प्रकार हनुमान् जी ने विभीषण को प्रेरित किया कि वे रामकार्य में सहयोगी बनें। अत: मानव-जीवन का कर्त्तव्य है कि रामनाम के साथ राम का काम भी किया जाए। हनुमान् जी का जीवन भी रामनाम लेते और राम का काम करते ही बीता।

रावण के सीता मां को अपहरण करने के बाद माता सीता के दर्द शोक, कष्ट,तनाव के बारे में सोचें तो यह बात स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि रावण जैसे राक्षस के चंगुल में फंसकर निकलना कितना असंभव कार्य था। किन्तु माता सीता का आत्मविश्वास, दृढ़ इच्छाशक्ति, पवित्र नैतिक साहस और सत्-चरित्र ही रावण से सीता जी को बचा पाया, जो कि मां सीता की एक तपस्या है। रावण हर काल में रहा है, रहा था और रहेगा। इसलिए उसकी ताकत से टकराने और सफल होने के लिए सुन्दरकाण्ड का प्रेरक संदेश सदा अवश्य रहेगा। इसलिए सब काण्डों के रहते हुए केवल इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया। रामायण के हर काण्ड में प्रेरक संदेश है किन्तु इस काण्ड में प्रत्येक सफलता के चरण को एक-एक करके अंकित किया गया है।

अनुष्ठान की दृष्टि से भी सुन्दरकाण्ड विशेष महत्त्व रखता है। कई चौपाइयाँ मन्त्र रूप में प्रयुक्त होती हैं। सभी संत-महन्त, शैव-वैष्णव या सगुण-निर्गुण सुन्दरकाण्ड की महिमा को सर्वोपरि मानते हैं-

कार्य की सफलता के लिए -

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कौसलपुर राजा।।

भारी से भारी विपत्ति के निवारण हेतु-

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी।।

सर्वविधि मंगल के लिए -

मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।।

इन चौपाइयों का पाठ किया जाता है। उत्तर प्रदेश,मालवा व राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र में सुन्दरकाण्ड का पाठ करने का प्रचलन आज भी है। इस प्रकार सुन्दरकाण्ड सब प्रकार से सुन्दर ही है।

-२८६, स्नेहकुंज कॉलोनी, जौनपुर दक्षिण, कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखण्ड

हिन्दी-पत्रकारिता के विकास में हरियाणा की पत्रकारिता का योगदान

-सुश्री रितु गुप्ता

पत्र-पत्रिकाएं इस वैज्ञानिक युग में संप्रेषण का सशक्त माध्यम हैं। सम्प्रेषण सूचना एवं प्रसार का नाम है। समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएं संप्रेषण की शक्ति में किसी से पीछे नहीं रहते। हरियाणा की पत्रकारिता का योगदान देश, काल और स्थिति के अनुसार नगण्य नहीं कहा जा सकता और यहां की पत्रकारिता आज विकास एवं प्रगति की ओर उन्मुख है, इसमें सन्देह नहीं।

राष्ट्रीय दृष्टि से हरियाणा की पत्रकारिता का स्वर अभी इतना सशक्त नहीं हो पाया, जितना होना चाहिए। यहां की पत्रकारिता व्यक्तिगत प्रयासों के फलस्वरूप ही जनमी और बढ़ी है। हरियाणा के भूमि-पुत्रों सर्वश्री बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं. राधाकृष्ण मिश्र एवं पं. माधवप्रसाद मिश्र जैसे पत्रकारों ने हिन्दी-पत्रकारिता को समृद्ध किया है। हरियाणा के सामाजिक दृष्टिकोण की झांकी यहां के पत्रों में देखने को मिलती है।

सामाजिक दृष्टिकोण से योगदान- समाज हमारी शक्ति का स्रोत है। पत्रकारिता भी इससे अलग कैसे रह सकती है। समाज की संगतियों और विसंगतियों को साथ लेकर उसे चलना होता है। संगतियों को बढ़ावा देना और विसंगतियों को हतोत्साहित करना पत्र-पत्रिकाओं का काम है। हरियाणा के पत्रों ने सामाजिक-उत्थान के क्षेत्र में जोरदार आंदोलन तो भले ही चलाया किन्तु समय-समय पर इसको वाणी जरूर देते रहे हैं। आर्यसमाज की विचारधारा से सम्बद्ध पत्र-पत्रिकाएं नशाबंदी, हरिजनोद्धार, दहेज-समाप्ति, अशिक्षा आदि बुराइयों के खिलाफ वातावरण बनाने में पीछे नहीं रहीं। 'सुधारक', आर्य, 'समाज-संदेश', 'राजधर्म', 'वेदवाणी', 'मेवात मंडल' जैसे पत्र सामाजिक-दशा के चहुंमुखी सुधार के लिए आवाज बुलंद करते आ रहे हैं।

'आपके नाम' पत्र ने अपनी अल्पायु के अंदर सामाजिक-उत्थान के पक्ष में जोरदार कलम उठाई। सामाजिक-विषमता के खिलाफ शंखनाद इसने किया। 'श्मशान के सन्नाटे में यह मौन अट्टहास कौन कर रहा है? लाशों से कफन चुराकर यह कौन अपनी गलियों में वंदनवार सजा रहा है'[1]? पत्र में आगे संघर्ष के लिए आह्वान किया गया है कि दूषित समाज को बदलने के लिए मजदूर एवं किसानों को आगे आना होगा। 'हरियाणा तिलक' में पं. श्री राम शर्मा जी ने समाजसुधार की आवश्यकता पर बल दिया है। 'दहेज का अभिशाप' भयंकर रूप धारण कर चुका है। बारातों में खूब शराब चलती है। हमारा समाज नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है। ये खराबियां समाज-सुधार से ठीक हो सकती हैं[2]। 'सफर और खबर' (साप्ताहिक) ने 'मेवात में दहेजलीला' के अग्रलेखनुमा समाचार के अन्त में समाज को इन शब्दों से सावधान किया है- 'यदि मेवात-क्षेत्र में दहेज- प्रथा की बढ़ती आग को नहीं रोका गया तो मेवात-समाज इसमें पिस जाएगा और सबसे अधिक नुकसान मेवात-क्षेत्र के गरीब-समाज को

१. प्रो. स्योताज सिंह, आपके नाम., अंक ८, वर्ष २, पृ. ४

२. हरियाणा तिलक, २२ जून, १९७६, पृ. २

होगा।[3] 'विप्रज्योति' पत्रिका में भी इस प्रथा पर जोरदार चोट की गई है। 'हरिजनों पर अत्याचार एक सामाजिक आर्थिक समस्या' शीर्षक सम्पादकीय ने इनके उत्थान के लिए आवाज उठाई। नशाबन्दी एवं लड़कियों से छेड़-छाड़ की समस्या सामाजिक है। इन विकृतियों को दूर करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा आवाज बुलन्द करने से अनुकूल प्रभाव पड़ता है। 'गदर' (पाक्षिक) का कथन है कि 'जब तक समाज का भला नहीं कर सकते, उस समय तक चाहे क्लर्क हो या मुख्यमंत्री, समाज के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता'[4]।

राष्ट्रीय दृष्टि से योगदान- दैनिक और साप्ताहिक पत्रिकाओं में कदाचित् ही कोई पत्र होगा जो राष्ट्रीय प्रभाव रखता हो। किन्तु हरियाणा की मासिक पत्रिकाओं ने साहित्य की दृष्टि से अपनी छाप जरूर छोड़ी है। 'वेदवाणी' और 'सुधारक' आज देश के आर्यसमाजी विचारों के लोगों में पढ़ा जाता है। 'जनसाहित्य' सभी हिन्दीभाषी प्रदेशों में पढ़ा जाने वाला मासिकपत्र था। 'सप्तसिंधु' 'सम्भावना' 'विदेशों के वातायन से' स्तम्भों से ज्ञाता होता है कि ये पत्रिकाएं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सर्वज्ञात हैं। 'मंच' बहुचर्चित पत्र देश के युवावर्ग में लोकप्रिय है। यदि आरम्भिक और मध्यकाल को लिया जाए तो 'जीयालाल प्रकाश', 'विजयानन्द' और 'यादव हितैषी' पत्र राष्ट्रीय महत्त्व रखते थे। राष्ट्रीय दृष्टि से इनका योगदान हरियाणा की पत्रकारिता के लिए गौरव की बात है।

संस्थागत विकास की दृष्टि से योगदान- भारत के समाचार-पत्रों के स्वामित्व पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि काफी बड़े भाग पर पूंजी-कंपनियों का अधिकार है। समाचार-पत्रों का प्रकाशन करने वाली मिश्रित पूंजी-कंपनियों की संख्या ५४ है।[5]

हरियाणा में कोई भी ऐसी प्राइवेट लिमिटेड कंपनी या ट्रस्ट नहीं है जो किसी समाचार-पत्र का प्रकाशन करता हो। जो भी पत्रिकाएं निकलती हैं वे सब एकल प्रयत्नों के फलस्वरूप हैं। समाचार-पत्र प्रकाशन का स्थापन तथा व्यवस्थापन हरियाणा की पत्रकारिता के लिए एक चुनौती है।

लेखकों को प्रेरणा प्रदान करने की दृष्टि से योगदान- प्रोत्साहन लेखक की खुराक है। हरियाणा की पत्र-पत्रिकाओं ने विशाल परिणाम में भले ही ऐसा न किया हो परंतु लेखकों को प्रोत्साहित करने में उनका योगदान अपनी स्थिति के अनुसार नगण्य भी नहीं है। 'सुधारक', 'हिन्दी संदेश', 'प्रयास', 'हरियाणा संदेश', 'आगमन', 'ज्ञानदेय', 'चेतना'..... आदि पत्रिकाओं ने उदीयमान लेखकों की रचनाओं को स्थान देकर उन्हें प्रोत्साहन देने का सराहनीय प्रयास किया। 'प्रयास-नवप्रयास' से प्रेरणा पा कर आज कई लेखक रचनारत हैं और यह प्रेरणा स्तम्भ के रूप में आज भी श्रीयुवक-समिति पुस्तकालय सिरसा में सुरक्षित है[6]। 'हरियाणा-संदेश' का योगदान सराहनीय है। 'अरुणाभ' साहित्यिक त्रैमासिक गुणात्मक दृष्टि से सराहनीय थी। 'खिलते कमल' साप्ताहिक नव लेखकों का पर्यायवाची नाम है।

३. सफर और खबर, ८ फरवरी, १९८२, पृ. २.

४. गदर, ३१ अप्रैल, १९८०, पृ.२

५. डॉ. सुकुमार नैन, भारतीय समाचारपत्रों का संगठन और प्रबन्ध, पृ. ७५

६. मूलप्रति की फोटोस्टेट प्रति परिशिष्ट ३

'भारतीय संस्कार' ने हरियाणा के लेखकों की रचनाओं को खूब स्थान दिया है।

हरियाणा एक प्रगतिशील राज्य है। इसकी राजनीतिक जड़ें गांवों में हैं। गांव राज्य की इकाई हैं। गांवों में विकास कार्यों का लेखा-जोखा भेजना संवाददाताओं का कर्त्तव्य है पर साथ ही जब लोकतंत्र पर आघात लगे तो उसके खिलाफ आवाज उठाना भी संवाददाताओं का कर्त्तव्य बनता है। दर्शन और श्रवण से उत्पन्न अनुभूतियों को लिपिबद्ध करना, घटनाओं का सजीव और रोचक, स्पष्ट और सरल, सत्य और साक्षर चित्रण करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक संवाददाता या रिपोर्टर अपनी कलम का धनी न हो[७]।

हरियाणा की पत्रकारिता का हिन्दी पत्रकारिता को योगदान के बारे में संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि इस पत्रिका ने हिन्दी-पत्रकारिता के कोष को संख्यात्मक दृष्टि से तो समृद्ध किया ही है, गुणात्मकता की दृष्टि से भी उसे समृद्ध व विकसित करने में अपनी ओर से कोई कमी बाकी नहीं छोड़ी है। अपनी सीमित क्षमताओं के फलस्वरूप पत्रकारिता की प्राय: हर विधा को अपना योगप्रदान दिया है। लोकतंत्र में पत्रकारिता की अहंभूमिका जनता तथा सरकार दोनों के लिए हितकर है। 'अधिकार' और 'चेतना इन दोनों पत्रों से हरियाणा को भारी आशा है। साहित्य की दृष्टि से 'संभावना', 'साहित्यानुशीलन', 'मंच' और 'तारिका' का योगदान गौरवास्पद है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण मानदण्ड स्थापित किए हैं जिस पर हिन्दी-पत्रकारिता उचित रूप से गर्व कर सकती है।

-हिन्दी प्रवक्ता, एस. डी. कालेज, अम्बाला कैन्ट।

७. नंद किशोर त्रिखा, समाचार संकलन और लेखन, पृ. ७४

■ ■ ■ ■ ■

भारत माता

श्री बाबू लाल प्रेम

वन-उपवन अनुराग मंजरित, मधुमय छटा ललाम।
शस्य-श्यामला भारत माता, तुझको कोटि-कोटि प्रणाम।
तेरा कण-कण पुण्य तीर्थ है, मधुर सुधा सम नीर है।
स्वर्ग सुखों को देने वाली, त्रिविध सुगंध-समीर है।
वसुंधरा धरती भू धरणी, अनगिन तेरे नाम।
शस्य-श्यामला भारत माता, तुझको कोटि-कोटि प्रणाम।
आलोकित हैं दसों दिशाएँ, तेरे सुयश प्रकाश से।
जग-उपवन की डाल-डाल, सुरभित तेरे मधुमास से।

-इन्द्रपुरी, आलमबाग, मानसनगर, लखनऊ-२२६०२३

औपनिषदिक कर्म-सिद्धान्त

–डॉ. राजेन्द्र कुमार

वैदिक-साहित्य भारतवर्ष की अमूल्य निधि है। यही वाङ्मय आज भी भारतवर्ष को गौरव के पद पर आरूढ़ किये हुए है। इसी वैदिक-साहित्य में उपनिषद् सबसे अर्वाचीन साहित्य के रूप में जाना जाता है अर्थात् उपनिषद् वेदों के अन्तिम भाग हैं, इसलिये उपनिषदों को वेदान्त (वेद+अन्त) भी कहा जाता है। इसी बात की पुष्टि आचार्य सदानन्द जी ने अपने वेदान्तसार में की है। वे लिखते हैं- **वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि।** अर्थात् वेदान्त शब्द का मुख्य अर्थ उपनिषद् है। वस्तुत: वेदों में जो भी आध्यात्मिक ज्ञान है, उसको ही एकत्र कर उपनिषदों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय दर्शन का मूलाधार ये उपनिषद् ही हैं। उपनिषदों में केवल पाण्डित्यपूर्ण दार्शनिक विचार मात्र ही हों, ऐसी बात नहीं है, अपितु यथार्थ लोकसामान्य तथ्य भी हैं, जिनका सम्बन्ध जीवन के अनेक क्षेत्रों से है। नैतिक उपदेशों का उदय भी इन्हीं उपनिषदों से हुआ है। ये नैतिक उपदेश समाज के लिये बहुत उपयोगी हैं।

उपनिषदों में कर्मसिद्धान्त

उपनिषदों में कर्म-सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन मिलता है। 'कर्मन्' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है जैसे- क्रिया, कार्य, कृति, निष्पादन, क्रियापालन, कर्तव्य, उत्पाद, बदलाव, एक स्वाभाविक या क्रियाशील गुण, दैव, पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम, किसी क्रिया का उद्देश्य और गति। कर्म मानव का एक आधारभूत गुण है। मानव जीवन में भोग और अपवर्ग, इन दोनों की प्राप्ति का साधन कर्म है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है वह जैसा कर्म करता है वैसा ही जन्म आदि फल उसे मिल जाता है। मनुष्य अच्छे कर्मों द्वारा सुख और बुरे कर्मों द्वारा पाप का भागी बनता है[1]।

अकर्मा मानव का अस्तित्व वैसे ही अवास्तविक है जैसे आकाशपुष्प। कर्म इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का नियामक है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना का माध्यम कर्म है और कर्म भी वह जो धर्मानुकूल है। अत: कर्म मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है और कर्मातीत होना जीवन का अन्ततोगत्वा उद्देश्य। कर्म से अभ्युदय भी मिलता है और अधोगति की भी प्राप्ति होती है। सुकर्म से मोक्ष (परमगति) और दुष्कर्म से अधोगति मिलती है। कर्म और अकर्म के विचार और निर्णय का आधार धर्म है। कर्माकर्म के परिणामों से उत्पन्न भोग का ही नाम जीवन है। सुख-दु:ख, भोग-कलेश का सम्बन्ध कर्म और देहीवान् से है। देह नश्वर है और आत्मा अमर है। चौरासी लाख योनियाँ जीव की विभिन्न

१. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४.४.५

सांसारिक गतियाँ हैं। जीवात्मा के सुकर्म आत्मा को अमरत्व की ओर ले जाते हैं। आत्मा अमर अवश्य है, लेकिन जीवात्मा के कर्मों के प्रभावों से वह परे नहीं है। सुकर्म आत्मा को परमात्मा में मिलने में सहायता देते हैं लेकिन अकर्मों के कारण आत्मा की, कर्म अनुसार जीव की विभिन्न गतियों में पुनरावृत्ति हुआ करती है। अमरत्व की प्राप्ति मोक्ष है जो सुकर्म से मिलती है। जीवात्मा के रूप में जीव की विभिन्न गतियों में, कर्मानुसार पुनरावृत्ति आवागमन है। आवागमन का चक्र और कर्म वे माध्यम हैं जिनके द्वारा जीवात्मा अपना सतत उद्विकास और अभ्युदय कर सकता है। आवागमन से मुक्ति, जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य है। मानवयोनि सर्वश्रेष्ठ है और एक ओर वह सत्कर्मों का परिणाम और, दूसरी ओर सत्कर्मों के लिए वह ऐसा अपूर्व अवसर है जो देवदुर्लभ है। इसीलिए संसार को कर्मक्षेत्र कहा गया है और धर्म-कर्म जीवात्मा के उस सतत उद्विकास का माध्यम है जिसकी अन्तिम परिणति मोक्ष और मुक्ति (आवागमन से छुटकारा) है। स्वर्ग और नरक की धारणाओं का सम्बन्ध भी कर्मसिद्धान्त है। इहलौकिक कर्मों के अनुसार ही जीवात्मा को स्वर्ग और नरक के जीवन का भोग मिलता है और उसके बाद, पूर्वजन्म में किये हुए इहलौकिक कर्मों के अनुसार जीवात्मा पुनः बना या बिगाड़ सकता है। इस प्रकार कर्म का दोहरा फल मिलता है और दोहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार जहां एक ओर, व्यक्ति कर्मों के अधीन है वहां, दूसरी ओर, कर्म भी व्यक्ति के अधीन हैं क्योंकि मानवजीवन व्यक्ति को वांछित कर्म चुनने और करने का अवसर प्रदान करता है। कर्म व्यक्ति के जीवनपर्यन्त वैयक्तिक तथा सामाजिक क्रियाकलापों को ढालता रहता है। अतः मनुष्य को निष्काम कर्म करना चाहिए।

अतः उपनिषदों में कहा गया है कि हे मनुष्य! तू इस जगत् में सौ वर्षों तक कर्मशील बनकर जीवन की कामना कर[२]। उनके अनुसार इस जगत् में कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना करनी चाहिये। मनुष्य का परम कर्तव्य है कि इस लोक में निष्काम भाव से परमेश्वर के निमित्त कर्म करते हुए ही सौ वर्षों तक जीवित रहने की इच्छा करे। इस प्रकार मनुष्यत्व का अभिमान रखने वाले मानव के लिए अन्य कोई सरल उपाय नहीं है जो कर्मों के बन्धन से छुटकारा दिला सके। कर्म ही एकमात्र सरल एवं श्रेष्ठ मार्ग है। कर्म स्वयं में जीव के बन्धन का कारण नहीं हैं। बन्धन का हेतु है फलासक्ति। फलासक्ति से रहित होकर जो कर्म किया जाता है, वह बन्धन का कारण नहीं बनता। जो व्यक्ति फलभोग की इच्छा से काम में प्रवृत्त होता है, वह स्वजीवन के अभिप्रेय को भूलकर अपनी आत्मा का हनन करता है। सृष्टि-रचयिता ने जिस उद्देश्य के लिए जीवात्मा को यह मानवशरीर दिया है, उसकी अनदेखी कर यदि विषय भोगों में ही

२. ईशावास्योपनिषद्, २

अपना जीवन बर्बाद करता है तो, वह अपने ही द्वारा आत्मघात करता है। गीता में भी यही बात कही गई है[3]।

मुण्डकोपनिषद्[4] के अनुसार यह मनुष्य शरीर मानो एक वृक्ष है। ईश्वर और जीव-ये सदा साथ रहने वाले दो मित्र पक्षी हैं। ये इस शरीर रूप वृक्ष में एक साथ ही हृदयरूप घोंसले में निवास करते हैं। इन दोनों में एक-जीवात्मा तो उस वृक्ष के फलरूप अपने कर्म-फलों को अर्थात् प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए सुख:दुखों को आसक्ति एवं द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा-ईश्वर उन कर्मफलों से किसी प्रकार किंचित् भी सम्बन्ध न जोड़कर केवल देखता रहता है। कठोपनिषद् में भी कर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह व्यक्ति जो दुराचार एवं दुष्कृत या पापकर्मों से निवृत्त नहीं हुआ, जो अपनी इन्द्रियों का नियन्त्रण शमन नहीं कर सका, जो विक्षिप्त चित्त वाला तथा सदा अशान्त मन वाला है, वह केवल (मौखिक) आत्मज्ञान द्वारा परब्रह्म प्राप्ति (शाश्वत शान्ति) को प्राप्त नहीं कर सकता।

कर्मसिद्धान्त नैतिक जगत् में वही स्थान रखता है जो भौतिक जगत् में एकरूपता के सिद्धान्त का है। यह नैतिक शक्ति के संरक्षण का सिद्धान्त है। कर्मसिद्धान्त के अनुसार नैतिक जगत् में अनिश्चित एवं मनमाना कुछ नहीं है। हम वही काटते हैं जो बीजते हैं। पुण्य के बीज से पुण्य की खेती फलेगी, पाप का फल भी पाप होगा। छोटे से छोटा कर्म भी चरित्र पर असर रखता है। बृहदारण्यकोपनिषद्[5] में भी कर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, जैसा आचरण करता है, वैसा ही मनुष्य हो जाता है। श्रेष्ठकर्म कर्त्ता श्रेष्ठव्यक्ति बनता है। दुरित में फंसा व्यक्ति दुष्ट बन जाता है। पापाचारी पापी-निन्द्य व्यक्ति बनता है। पुण्य से ही जीवन में पवित्रता, निर्मलता एवं स्वच्छता आती है। दुष्कृत जीवन को कलुषित, जघन्य, दु:खी तथा अशान्त बना देता है। समाज की उन्नति तथा संरक्षण इस बात में है कि व्यक्तिगत जीवन के भोग और उपयोग को, सुख तथा दु:ख को, मान तथा अपमान को, यश तथा अपयश को तथा पाप-पुण्य को ध्यान में रखते हुए निष्काम भाव से कर्म करते रहना। मनुष्य जानता है कि कर्म में प्रवृत्त कराने वाली जो कुछ प्रवृत्तियाँ उसके अन्दर अब विद्यमान हैं वे उसके अपने जान-बूझकर किये गये चुनाव का परिणाम हैं। ज्ञानपूर्वक किये गये कर्म आगे चलकर अनजाने में स्वभाव बन जाते हैं और आज जो हमारी स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं वे भी पूर्वजन्म में ज्ञानपूर्वक किये गये अपने ही कर्मों का परिणाम हैं। जैसे मनुष्य की छाया बराबर साथ रहती है, कर्म भी बराबर साथ रहता है। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि हमारे जीवन के अन्दर सब कर्मों का लेखा-जोखा रहता है, जिसे काल धुंधला नहीं कर सकता और न ही मृत्यु मिटा सकती है। गीता में भी भगवान्

३. गीता, ६.५;६

४. मुण्डकोपनिषद्, ३.१.१

५. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४.४.५

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश दिया है[६]।

वस्तुतः उपनिषदों का मत है कि हमें समाजसेवा द्वारा ही कर्मों से मुक्ति मिल सकती है। जब तक हम स्वार्थ को लेकर काम करते हैं, हम कर्मबन्धन के नियम के अधीन रहते हैं। जब हम निष्काम कर्म करते हैं, तो मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जब तक तुम इस प्रकार निष्काम कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करते हो, तो ऐसा कारण नहीं हो सकता है कि कर्म तुम्हें बन्धन में डाल सकें। कर्म के कारण नहीं किन्तु स्वार्थमय कर्म के कारण ही हम जन्म और मृत्यु के बन्धन में पड़ते हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद्[७] में भी कहा गया है कि सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो। सत्यकथन, सत्याचरण में कोई प्रमाद (लापरवाही) नहीं करनी चाहिये। जो अनिन्दनीय कर्म हैं अर्थात् सत्कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिए, इतर अर्थात् दुष्कृत से सदा उपरत (विरत) रहना चाहिये।

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि मृत्यु के बाद आत्मा शरीर का त्याग कर देती है और इस जन्म में किये हुए कर्मों का फल ही तब साथ जाता है। अगले जन्म में आत्मा को क्या रूप मिलेगा, यह कर्मफल द्वारा निर्धारित होता है। इसी उपनिषद् में इस प्रश्न के उत्तर में मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि 'मानव का भावी जीवन उसके कर्मों से निर्धारित होता है। शुभ कर्मों का परिणाम शुभ होता है और अशुभ कर्मों का परिणाम अशुभ होता है[८]। अतः कर्मानुसार पुनर्जन्म के विषय में इस उपनिषद् में कहा गया है कि शरीर से आत्मा के निकलने के साथ-साथ प्राण भी निकल जाते हैं, जैसा जिसका आचार-व्यवहार होगा वैसी ही उसकी आत्मा होगी जिसके कर्म सत् होते हैं वह सत् होता है और जिसके कर्म असत् होते हैं वह असत् होता है। पवित्र कर्मों से पवित्रता आती है और अपवित्र कर्मों से अपवित्रता आती है। इसीलिए कहा जाता है कि व्यक्ति केवल इच्छाओं का ढेर है। जब नश्वर मनुष्य इच्छा-रहित हो जाता है, तो वह अमर हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को तब तक बार-बार जन्म लेना पड़ता है जब तक वह कर्मातीत न हो जाये। अतः मनुष्य का पुनर्जन्म भी उसके शुभ या अशुभ कर्मों पर निर्भर है।

अतः उपनिषदों के मतानुसार कर्मसिद्धान्त से बढ़कर कोई दूसरा सिद्धान्त जीवन एवं आचरण में इतना अधिक महत्व नहीं रखता है। कोई भी मनुष्य क्षणभर भी कुछ न कुछ कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। स्वाभाविक गुण उसे कर्म करने के लिए प्रवृत्त करते ही हैं जैसा कि उपनिषदों की सारभूत गीता के अनुसार-

मनुष्य को सुख की प्राप्ति अच्छे कर्मों से होती है, परन्तु अच्छे कर्म करना तभी सम्भव है जब मनुष्य ज्ञानपूर्वक कर्म करे। ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए मनुष्य इतनी उन्नति कर लेता है कि

६. गीता, २.४७

७. तैत्तिरीयोपनिषद्, १.११

८. बृहदारण्यकोपनिषद्, ३.२.१३

परम ज्ञान तक पहुँच जाता है। तभी वह अमृत की प्राप्ति कर सकता है। जो कर्म केवल कठपुतली बनकर अज्ञानपूर्वक किये जाते हैं उनसे अमरत्व की आशा रखना व्यर्थ है। श्रद्धापूर्वक समझ-बूझकर जो कर्म किये जाते हैं वे ही उत्कृष्ट फल देने वाले होते हैं। ज्ञान के बिना कर्म अन्धा है तो कर्म के बिना ज्ञान लंगड़ा-लूला। ज्ञान और कर्म के इसी समन्वय को भगवद् गीता[९] में योग कहा है। जिसके अनुसार- भक्ति में संलग्न मनुष्य इस जीवन में ही अच्छे तथा बुरे कार्यों से अपने को मुक्त कर लेता है। अत: योग के लिए प्रयत्न करो क्योंकि सारा कार्य-कौशल यही है। अत: 'कर्म' शब्द का तात्पर्य है कर्तव्य, धर्मानुकूल व्यापार। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी में है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करे। इस जीवन में हमें जो कुछ प्राप्त होता है, वह हमें बिना किसी क्षोभ के स्वीकार करना चाहिये कि हमारे पिछले कर्मों का ही फल है किन्तु भविष्य फिरभी हमारे अपने वश में है और इसलिए हम आशा एवं विश्वास के साथ कर्म कर सकते हैं। कर्म भविष्य के प्रति आशा का संचार करता है एवं भूतकाल को भूल जाने को कहता है। इससे मनुष्यजाति को यह अनुभव होता है कि संसार के पदार्थों, सफलताओं एवं विफलताओं से आत्मा के गौरव पर कोई अवांछनीय प्रभाव नहीं पड़ सकता। केवल 'पुण्य' ही श्रेय है न कि पद और धन-दौलत। साधुता के अतिरिक्त अन्य कुछ श्रेय या कल्याणकारी नहीं है। ज्ञान और कर्म का समन्वित रूप ही उपनिषदों का कर्मसिद्धान्त है। यही व्यावहारिक है, कल्याणकारी है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि- वेदों के अनुसार ऋषियों ने जिन कर्तव्य कर्मों को जाना और जिनका उपदेश दिया और जिन कर्मों का पूर्वकाल के लोग पालन करते रहे हैं, हे सत्यमार्ग के अभिलाषियो! तुम अपने आचरण उन्हीं के अनुसार बनाओ। संसार में सत्कर्मी बनने का यही मार्ग है। इसी में ही जीवन की सार्थकता है। यही उपनिषदों का ज्ञानपूर्वक निष्काम करने का उपदेश है।

-संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बीटन,
तहः हरोली, जिला ऊना (हि०प्र०)

---

९. गीता, २.५०

समकालीन योगदर्शन

—सुश्री कामिनी कुमारी

प्राचीन काल से इतर आधुनिक समय में भी कुछ चिन्तक व विचारक ऐसे हुए हैं जिन्होंने समाज के उत्थान व विकास के लिए योगशास्त्र की पर्याप्त भूमिका को आवश्यक माना तथा उसके प्रसार का कार्य किया है। उन्होंने योगशास्त्र के सिद्धान्तों को नवीन रूप में प्रस्तुत कर लोगों का ध्यान आकर्षित करने एवं समाज के मध्य योगशास्त्र की प्रविधियों को लोकप्रिय बनाने का भी कार्य किया। इन विद्वानों में स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, गांधी, योगानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का अवलोकन द्रष्टव्य है।

विवेकानन्द व योग- भारत के राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास हेतु गीता के निष्काम कर्मयोग की उपादेयता प्रतिपादित करने में आधुनिक दार्शनिक विवेकानन्द का प्रमुख योगदान है। सामान्यत: 'योग' शब्द के साथ दो अर्थ जुड़े रहते हैं- प्रथम है 'मिलन' दूसरा 'विशेष प्रकार की साधना'। विवेकानन्द ने इसका व्यापक अर्थ दिया है, जिसमें ऊपर बताए गए दोनों अर्थ समाविष्ट हैं। उनके अनुसार योग के अन्तर्गत कुछ विशेष प्रकार के अनुशासन आते हैं। इन अनुशासनों का संबंध ज्ञान-संज्ञान या भावना या मानवीय कर्मों से हो सकता है या फिर एक ऐसे अनुशासन से ही हो सकता है जिसमें इन तीनों अनुशासनों का समन्वित-संगठित रूप हो। वे अन्तिम विकल्प को अधिक महत्त्व देते हैं। वे मात्र ये नहीं कहते कि कोई ऐसा एक प्रकार का योग है, जिसमें ज्ञान, भावना तथा कर्म से संबंधित अनुशासन समाविष्ट है, बल्कि वे कहते हैं कि इन तीनों प्रकार के अनुशासनों को भी पृथक्-पृथक् योग-रूप में कहा जा सकता है, क्योंकि इन तीनों में मुक्ति प्राप्त करने की क्षमता निहित है। वे एक-दूसरे से असंगत भी नहीं हैं बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं।

विवेकानन्द इन सिद्धान्तों को पृथक्-पृथक् रूप में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग व राजयोग के रूप में प्रस्तुत करते हैं। चार योग-मार्गों के पृथक् विवरण के पश्चात् भी विवेकानन्द कहते हैं कि इन सबों का एकमात्र लक्ष्य है- 'अमरता की प्राप्ति'। ये एक ही लक्ष्य तक पहुंचने के अलग-अलग मार्ग हैं। इन्हें चार पृथक् मार्गों के रूप में प्रस्तुत करने का कारण यह है कि विवेकानन्द ने विभिन्न मनुष्यों की पृथक्-पृथक् अभिरुचि, मन:स्थिति, मनोवृत्ति व क्षमता के कारण ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित करना आवश्यक समझा। यह संभव है कि किसी एक व्यक्ति के लिए ज्ञान-मार्ग सम्भव प्रतीत न हो तथा भक्तिमार्ग उसकी मन:स्थिति के अनुकूल एवं सामर्थ्य के अन्तर्गत हो। अत एव हर-एक व्यक्ति अपने परमलक्ष्य तक सुलभ मार्ग का चयन कर पहुँच पाने में समर्थ हो सकेगा। विवेकानन्द कहते हैं कि कोई साधक किसी भी मार्ग को अपनाए, यदि वह उसका अनुशीलन लगन एवं निष्ठा से करता है, तो वही मार्ग उसे उसके लक्ष्य तक ले जाएगा।

महर्षि अरविन्द व समग्रयोग- राधाकृष्णन ने श्री अरविन्द की उपलब्धियों का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है- दर्शन के मूलभूत तत्त्वों तक पहुँच, आन्तरिक जीवन के निर्माण की दिशा में निष्ठावान् प्रयास और मानवता व उसके भविष्य के प्रति अगाध प्रेम अरविन्द की कृतियों को वह गहराई एवं सम्पूर्णता

प्रदान करता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।[1]

अरविन्द के अनुसार विकास-प्रक्रिया का चरम लक्ष्य 'दिव्यजीवन' की स्थापना है। उनके अनुसार धरती पर इसके अवतरण की प्रक्रिया को आध्यात्मिक कर्मों के द्वारा तीव्र किया जा सकता है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि इसके अवतरण की प्रगति को तीव्र करने की प्रक्रिया क्या है? श्री अरविन्द के अनुसार वह प्रक्रिया 'योग' है– योग का अर्थ 'ईश्वर-मिलन'। यह पारलौकिक स्तर पर या सार्वभौम स्तर में सर्वमुक्ति के रूप में हो सकता है अथवा वैयक्तिक स्तर में हो सकता है। इनमें से किसी का भी चयन किया जा सकता है। अरविन्द का कहना है कि उनका योग ऐसा है कि 'ये तीनों विधाएँ एक साथ जुटी हुई हैं। उनके अनुसार योग वह प्रक्रिया है जो चेतना को विस्तृत करने, उच्चतर उठाने तथा अन्तत: एकरूप होने की प्रक्रिया को आकार देती है। योग से इन सारी प्रक्रियाओं को बल मिलता है। अतएव अरविन्द के योग को 'पूर्ण अद्वैतयोग' या 'पूर्णयोग' कहते हैं।

अरविन्द योग के स्वरूप का विवेचन विभिन्न रूपों में करते हैं। योग की विभिन्न व्याख्याएँ इस प्रकार हैं– 'योग मानव की सम्पूर्णता में ईश्वरत्व का उत्प्रवाह है।' 'योग प्रकृति में तथा प्रकृति के मोक्षत्व का प्रयत्न है– मात्र प्रकृति से मोक्षत्व का नहीं।' 'योग को आत्म-चेतना न मानकर आध्यात्मिक आत्म-अभिव्यक्ति कहना चाहिए।'

इस प्रकार के विवरणों के आधार पर अरविन्द के अनुसार योग की एक विशिष्टता प्रकाश में आती है। उनके अनुसार योग का लक्ष्य इसी जीवन में शरीर रूप में ही ईश्वरत्व की पूर्ण चेतना प्राप्त करना है। योग अनिवार्यत: किसी अतिप्राकृतिक जीवन में प्रवेश नहीं अपितु इसका लक्ष्य है भौतिक, जैविक, मानसिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन लाना। अत: अपने सामान्य दार्शनिक विचार के अनुरूप अरविन्द कहते हैं कि योग का लक्ष्य उत्थान तथा अवतरण दोनों में है। यह विकास-प्रक्रिया में घिरे आत्मा के उत्थान का प्रयत्न है, साथ-साथ उच्चतर रूपों में अवतरण का प्रयत्न है। यह उच्चतर शक्तियों को मानस पर ही नहीं, जड़तत्त्व में भी उतारने का प्रयत्न है। इस प्रयत्न की परिणति अतिमानसिक रूपान्तरण में है। अत: अरविन्द के पूर्ण योग का चरम लक्ष्य है जीवन एवं जगत् का ईश्वरत्व रूप में रूपान्तरण, 'दिव्य-जीवन' का अवतरण जो एक प्रकार से वैयक्तिक मोक्ष न होकर सामुहिक मोक्ष है– सर्वमुक्ति है।

महात्मा गांधी व अनासक्तियोग– एक महान् मानवतावादी एवं चिन्तक होने के साथ-साथ गांधी जी वस्तुत: एक योगी भी थे। अपने राजनैतिक जीवन के अतिरिक्त गांधीजी योग के क्षेत्र में एक महान् आविष्कर्त्ता के रूप में माने जाते हैं, जिन्होंने अपना स्वयं का दर्शन विकसित किया और अपनी विशिष्ट साधना-पद्धति भी सृजित की। महात्मा गांधी का दर्शन है– 'सर्वोदय' एवं उनकी साधना-पद्धति थी– 'अनासक्तियोग'। जिसके मुख्य घटक सत्याग्रह एवं रचनात्मक कार्यक्रम हैं। संस्कृतभाषा का सर्वोदय शब्द सभी के उन्नयन का वाचक है। सर्वोदय से तात्पर्य है एक व्यक्ति के संदर्भ में उसका उसके व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास के साथ सर्वांगीण विकास अथवा सम्पूर्ण समाज के सर्वोदय से तात्पर्य है उस समाज के सभी लोगों का विकास। एक व्यक्ति का सर्वोदय है, उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास। एक समाज के सर्वोदय से तात्पर्य है, उसके सभी सदस्यों द्वारा अपनी योग्यतानुसार पूर्ण विकास। इस प्रकार एक सर्वोदय-समाज इस बात की संभावनाओं का

१. दिवाकर आर. आर. : महायोगी श्री अरविन्दो में राधाकृष्णन की भूमिका

संकल्प करता है कि उसका प्रत्येक सदस्य अपनी उच्चतम विकास की सम्भावनाओं की ओर अग्रसर हो, चाहे वह किसी भी राष्ट्र, जाति, कुल, लिङ्ग या धर्म का हो। व्यक्तिगत सर्वोदय भी अन्ततः संपूर्ण समाज के सर्वोदय की ओर अग्रसर होता है। यह सिद्धान्त दो प्रकार से क्रियान्वित होता है- (१) रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा विकास तथा (२) सत्याग्रह के माध्यम से क्रान्ति। व्यक्तिविशेष भी सामाजिक सर्वोदय के लिए तब कार्यरत होता है, जब वह अपना सर्वोदय भी करता है। इस प्रकार अनासक्ति योग में व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों का टकराव नहीं होता है एवं दोनों एक दूसरे का संवर्धन करते हैं।

परमहंस योगानन्द व क्रियायोग- परमहंस योगानन्द विशिष्ट आध्यात्मिक विभूतियों में एक माने जाते हैं। दशकों पूर्व उनके द्वारा प्रतिपादित बहुत से धार्मिक एवं दार्शनिक विचार और पद्धतियाँ अब शिक्षा, मनोविज्ञान, व्यवसाय, चिकित्सा और अन्य क्षेत्रों में अभिव्यक्ति पा रही हैं तथा इस प्रकार मानव-जीवन को एक अधिक एकीकृत, मानवीय एवं आध्यात्मिक स्वरूप देने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

परमहंस योगानंद ने मुख्यरूप से क्रियायोग- विज्ञान का उल्लेख किया है जो कि परमगुरु (गुरु के गुरु) लाहिड़ी महाराज के कृतित्व से ही आधुनिक भारत में सुप्रचलित हो पाया है। 'क्रिया' शब्द संस्कृत के - 'कृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है करना, कार्य करना, प्रतिक्रिया करना। कार्य-कारण की स्वाभाविक विधि 'कर्म' शब्द भी उसी धातु से बना है। इस प्रकार 'क्रियायोग' का अर्थ कुछ विशिष्ट क्रियाओं द्वारा परमात्मा के साथ संयोग स्थापित करना है। श्रद्धापूर्वक इस प्रविधि का अभ्यास करने वाला योगी कार्य-कारण चक्र के नियम-बन्धन से मुक्त हो जाता है। योगानन्द के अनुसार वस्तुतः यह क्रियायोग उसी विज्ञान का पुनरुज्जीवन है जिसे सहस्राब्दियों पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रदान किया था और पश्चात् जिसका ज्ञान पतञ्जलि आदि को तथा उनके शिष्यों को प्राप्त हुआ।

'क्रियायोग' एक सरल मनःकायिक प्रणाली है, जिसके द्वारा मानव-रक्त कार्बन से रहित तथा आक्सीजन से प्रपूरित हो जाता है। इस अतिरिक्त ऑक्सीजन के अणु जीवन-प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरुदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं। अशुद्ध एवं नीले रक्त संचय को रोककर योगी तन्तुओं के अपक्षय को कम अथवा रोकने में समर्थ होता है। प्रगत योगी अपने कोशाणुओं को जीवन-शक्ति में रूपान्तरित कर सकता है।[२]

परमहंस योगानन्द ने अपने विश्वव्यापी आध्यात्मिक एवं लोकोपकारी कार्य को चलाने के लिए 'योगदा सत्संग सोसाइटी' (वाय. एस. एस.)। सेल्फ रियलाइजेशन फेलोशिप (एस. आर. एस.) की स्थापना की। आज भी रांची में स्थापित यह संस्था योगानन्द के विचारों को आगे बढाने के लिए निष्काम भाव से कार्यरत है।

इन सभी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित योग के सिद्धान्तों से यही परिलक्षित होता है कि परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधन के रूप में अथवा साध्य के रूप में योग की महत्ता सर्वातिशयी है। स्वात्मानुभूति हो अथवा परमात्मा से सायुज्यता, योग दोनों में ही समान रूप से आवश्यक है। दोनों ही अवस्थाओं में योग की क्रिया घटित होती है। वस्तुतः स्वात्मानुभूति व परमात्मा से मिलन ही साध्यरूपी योग है जिसकी प्राप्ति साधनरूपी योग से होती है।

-शोधच्छात्रा, विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम्, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-११००६७

२. Autobiography of a Yogi, Ch. No. 26.

संस्कृत-साहित्य में नीति

–श्री सोनू कुमार

संस्कृत-साहित्य भारत की एक अमूल्य एवं अनुपम निधि है। इसमें आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, व्यावहारिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन का अद्वितीय चित्रण है। ऋग्वैदिक काल से वर्तमान समय तक संस्कृत-साहित्य की समृद्ध धारा अविछिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है। इसमें भारतीय सभ्यता, चिन्तन, रीति-नीति, धर्म-कर्म, साहित्य एवं दर्शन सभी का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। नीति ही है जो मनुष्य को सही और गलत का निर्णय कराती है। नीतिशास्त्र मानव-जीवन में कर्त्तव्य-अकर्तव्य, सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ आदि के विशिष्ट ज्ञान की ओर प्रेरित करता है। यह शास्त्र दर्शन का वह अंग है जो मानव आचरण की समीक्षा करता है। इसका उद्देश्य मानव-समाज के सदस्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करना है।

नीति शब्द का अर्थ है पथ का प्रदर्शन, ले चलना या ले जाना।[१] संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ में नीति शब्द के अनेकार्थ प्रस्तुत किये गये हैं जैसे-ले जाना, पथ प्रदर्शन, शील युक्ति-उपाय, आचारपद्धति।[२] संस्कृत-साहित्य मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित है- वैदिक और लौकिक। यद्यपि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य ही नीति की खान है, परन्तु यहाँ चयनित विषयों का ही वर्णन किया जा रहा है। नीतिगत साहित्य का मुख्य उद्देश्य संसार का दर्शन है जिसके माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व व्यावहारिक बुराइयों को दूर करना है।

जैसा राजा वैसी प्रजा अर्थात् जिस प्रकार का आचरण राजा करता है उसकी प्रजा भी वैसा ही आचरण करती है। इसलिए राजा को नीति-निपुण होना चाहिए। राजा की नीतियाँ किस प्रकार की होनी चाहिए। इस विषय पर संस्कृत-साहित्य में विशेष प्रकाश डाला है- रामायण के अयोध्याकाण्ड में राम के राजा बनने के विषय में नीतिपूर्ण वचन कहे गये हैं कि राम धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, गुणियों के गुणों का आदर करने वाले, क्षमाशील, दु:खियों को धीरज बंधाने वाले, मृदुभाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमलस्वभाव, स्थिरचित्त, सदैव भव्यमूर्ति, निन्दा से परे और समस्त मनुष्यों में प्रियवादी सत्यवादी हैं।[३] राजा की शासन-व्यवस्था को परिभाषित करते हुए कालिदास कहते हैं कि राजा की शासन-व्यवस्था न अधिक मृदु और न ही अतिकठोर होनी चाहिए। क्योंकि ये दोनों प्रकार की शासन-व्यवस्था प्रजा में अशान्ति एवं अनुशासनहीनता का कारण होती है। अत: समशीतोष्ण शासन-व्यवस्था का मध्यम मार्ग ही श्रेयस्कर होता है।[४] शुक्रनीति में कहा गया है कि नीति का पालन करने वाला राजा प्रजा को भी नीतिमार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सकता है। नीति-ज्ञान का अभाव

१. संस्कृत हिन्दी कोष, पृ.५५०
२. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ.६२५
३. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड. २.३१
४. रघुवंशम्, ४.८

राजा के लिए सदैव कष्टकारी होता है।[५]

धैर्य मनुष्य को विपत्ति में विजय दिलाता है। नीतिशतक में भर्तृहरि का कथन है कि महान् पुरुष विपत्ति आने पर धैर्य रखता है, प्रभावशाली होने पर भी क्षमावान् होता है, सभा में बोलने वाला, युद्ध में शूरवीर, यश में इच्छावान् और शास्त्र का व्यसनी होता है।[६] सभी को एक रीति से ही भोजन कराना गृहस्थों के लिए प्रशंसनीय होता है। अतिथि हो, मित्र-बन्धु-बान्धव हो या सेवक हो इन सभी के साथ समान रीति से भोजन करना गृहस्थों के लिए प्रशंसा योग्य होता है।[७]

मनुष्य को सुख हो अथवा दु:ख हो एक समान स्थिति में रहना ही श्रेयस्कर माना गया है। सुख व दु:ख में एक समान व्यवहार ही योग की परिभाषा है जैसे श्रीमद्‌भगवदगीता में कहा गया है कि "समत्वं योग उच्यते"।[८] भर्तृहरि ने भी यही कहा है कि वीर व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। चाहे मृत्यु की स्थिति भी उत्पन्न हो जाये वह अपने न्यायपथ पर अडिग रहता है।[९] सज्जनों की सङ्गति गुणों को देने वाली होती है। चाणक्य मुनि का कथन है कि "गुणवदाश्रयान्निर्गुणोऽपि गुणी भवति"[१०] अर्थात् निर्गुण व्यक्ति भी गुणवान् के संसर्ग में रहता-रहता गुणी हो जाता है। किसी भी कार्य को करने से पूर्व मनुष्य को उसके विषय में तथा उसके परिणामों के विषय में भली-भाँति विचार कर कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। मनुष्य अपने अनुभव, शक्ति और विचारशक्ति दोनों से विचार कर परिणाम के कारणों का ज्ञान प्राप्त कर किस साधन से यह कार्य किसी प्रकार होगा, यह सब ज्ञात कर कार्य को प्रारम्भ करें।[११]

महात्मा विदुर के अनुसार मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति उसका शील ही है। शील से हीन व्यक्ति का अध:पतन हो जाता है।[१२] उनका कथन है कि सदाचार से हीन छलकपटपूर्ण आचरण करने वाले को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते हैं।[१३] नारायण पण्डित हितोपदेश में कहते हैं कि असह्य को भी सहन करने वाले, अहिंसक तथा सभी को आश्रय देने वाले को ही समस्त सुख प्राप्त होते हैं।[१४]

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत-साहित्य नीतियों से भरा पड़ा है। नीतिज्ञों के कथनों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि इन नीतियों को जीवन में आत्मसात् कर लिया जाए तो मनुष्य का जीवन अलौकिक-प्रकाशमय हो जायेगा तथा वह जीवन के मार्ग पर सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेगा।

-शोधच्छात्र, वी.वी.बी.आई. एस.एण्ड आई.एस., साधु आश्रम, होशियारपुर।

५. शुक्रनीति, १.१६
६. नीतिशतक. ५६
७. महाभारत शान्तिपर्व, १८६.९
८. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, २.४८
९. नीतिशतक, ७४
१०. चाणक्यसूत्राणि, १७६
११. वही, ११६
१२. विदुरनीति, २.४८
१३. वही, ३.४३
१४. हितोपदेश, १.६४

नयी शती के पौराणिक हिन्दी उपन्यासों में धार्मिक सन्दर्भ

–सुश्री रचना

साधारण भाषा में धर्म का अर्थ किसी मत-विशेष के अनुसार आचरण करना है, किन्तु भारतीय संस्कृति में इसका प्रयोग इतना सीमित कभी नहीं रहा। भाषा एवं विचार की परम्परा में यह शब्द अनेक अर्थों का पर्यायवाची रहा है। यह शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना आदि। धर्म प्रजा का धारण अथवा पालन करता है, इस अर्थ में वह कर्ता है तथा जब मनुष्य उसका धारण अथवा पालन करता है तो वह कर्म बन जाता है[१]। सामूहिक जीवन की शुरुआत से ही सार्वजनिक हित के लिए मनुष्य ने स्वेच्छा से अपने ऊपर प्रतिबन्ध लगाकर, कुछ मर्यादाओं, नीतियों और नैतिकताओं को जन्म दिया जिनके अनुसार चलना ही उसने अपना धर्म बना लिया। इस संदर्भ में काणे का मत है, 'धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं है, प्रत्युत यह जीवन का एक ढंग या आचरण-संहिता है, जो समाज के किसी अंग या व्यक्ति के रूप में मनुष्य के कर्मों एवं कृत्यों को व्यवस्थापित करता है तथा उसमें क्रमशः विकास लाता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व के लक्ष्य तक पहुंचने के योग्य बनाता है[२]। स्पष्टतः धर्म मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित है जिसमें उसके सब कर्त्तव्य, आचार और नाना व्यापार समाहित होते हैं जिनसे उसके तथा सामाजिक जीवन का कल्याण होता है[३]।

उक्त मान्यताओं के अनुसार आचरण करता हुआ मनुष्य जब सात्विक जीवन बिताने लगता है तो वह अपेक्षाकृत इसके सूक्ष्म तत्त्वों के विषय में चिन्तन करने लगता है। उसका यह चिन्तन और प्राप्त परिणाम ही दर्शन कहलाता है। धर्म से दर्शन तक की इस यात्रा में एक ऐसी स्थिति आती है जिसमें मनुष्य विभिन्न रागात्मक पद्धतियों के द्वारा अदृश्य सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करने लग जाता है और यह अध्यात्म का क्षेत्र है। भारतीय संस्कृति में इन तीनों स्थितियों को जीवन के लिए आवश्यक मानकर, आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत इनको पाने का विधान रखा गया है। मनुष्य गृहस्थ आश्रम में धर्म का पालन करते हुए जीवन के तृतीय चरण वानप्रस्थ में प्रवेश करता है। इस अवस्था में संसार से निस्पृह होकर अदृश्य सत्ता से सम्बन्ध जोड़ने लगता है और संन्यास आश्रम में प्रवेश करके वह जीवन-जगत् की गुत्थियों को खोलने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में पाण्डुरंग का मानना है कि आयु के बढ़ने के साथ-साथ जब व्यक्ति की इन्द्रियां शिथिल होने लगती हैं और वह सांसारिक उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यों को पूरा कर चुकता है तब वह इस सांसारिक जीवन को छोड़कर शांतिपूर्वक वातावरण में रहकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहता है[४]।

१. शकुन्तला रानी तिवारी, महाभारत में धर्म भारतीय पुस्तक मन्दिर, भरतपुर, स० १९७० ई., पृ. ११५
२. पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. १०१
३. कुसुम दत्ता, महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म का स्वरूप, पृ. १३
४. पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. २६६

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म विभिन्न रूपों में जीवन को प्रभावित करता है।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में महाकाव्य युग धर्म-दर्शन के रूप में विशेष विख्यात है। धर्म को उन दिनों जीवन की धूरी और चरम लक्ष्य मानकर इतिहास, वर्तमान तथा भविष्य से जोड़ा गया। इस प्रकार इसके तीन हिस्से बनाए गए। पहले हिस्से में इतिहास से, परम्परा से ली हुई सीख थी, दूसरे हिस्से में वर्तमान में सामने खड़ी समस्याओं का समाधान ढूंढा गया। तीसरा हिस्सा भविष्य-द्रष्टा धर्म का था। इसके अन्तर्गत निरन्तर बदल रहे समय और प्रकृति के साथ चलते हुए धर्म का अनुमान लगाकर सम्भावित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना था[५]। इस प्रकार यह मानना पड़ेगा कि विवेचित काल के जीवन में धर्म का विशेष महत्त्व था और सत्य, निष्ठा, संयम, त्याग, चरित्र, मर्यादा आदि धर्म के विभिन्न रूप सामाजिक जीवन में चरितार्थ होते थे।

रामायणकालीन धर्म का स्वरूप अधिकांशत: वैदिक युगीन ही था। तत्कालीन जीवन के अधिकतर क्रिया-कलापों का धार्मिक वैदिक मंत्रों के अनुसार सम्पन्न होना तथा धार्मिक क्रियाओं का 'यथाविधि', 'यथाशास्त्रम्' या 'शास्त्रदृष्टेन विधिना' किए जाने का वाल्मीकि ने बार-बार उल्लेख किया है[६]। यज्ञ के अनुष्ठान काल में व्यवस्था एवं अनुशासन बनाये रखने के लिए विशेष विधि-विधान थे। यज्ञ में दीक्षित होने के बाद यजमान को मन और इन्द्रियों पर संयम करके दीक्षा के समस्त नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना पड़ता था। दीक्षा की अवधि में किसी पर क्रोध करना पुण्य का नाशक होता था। इसलिए यज्ञ के अनुष्ठान में अहिंसक रहकर शान्तिपूर्वक शोध करने का संकल्प लिया जाता था। विश्वामित्र द्वारा राम और लक्ष्मण को दशरथ से मांगे जाने[७] के पीछे एक कारण यह भी था। राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ[८], राजा जनक द्वारा सीता स्वयंवर से पूर्व धनुष-यज्ञ[९] और राम का अखण्डता के नाम पर अश्वमेध यज्ञ[१०] करने से तत्कालीन जीवन में यज्ञों के महत्त्व और प्रचलन पर प्रकाश पड़ता है। उन दिनों विभिन्न यज्ञों की विधि भिन्न-भिन्न थी। दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के समय ऋषि शृंग्य ने अपने अनुचरों को आदेश दिया था, '........ छाया देखकर सात यज्ञकुंड बनाओ, ऐसा कुंड हो कि नीचे अग्नि जलती रहे और ऊपर पात्र में वनस्पतियों को पकाया भी जा सके, नीचे समिधा डालने हेतु स्थान भी होना चाहिए। .... उस हवनकुंड में लकड़ी जलाओ और बगल की यज्ञवेदी में बिना छाल की यह काली लकड़ी[११]।' राजा जनक ने धनुषयज्ञ के आयोजन में विभिन्न देशों के ब्राह्मणों के लिए सुंदर, स्वच्छ यज्ञशालाएँ बनवाकर एक माह तक हवन किया[१२]। गुरु वशिष्ठ विभिन्न यज्ञों की स्थापना करना चाहते थे जैसे- गोमेध यज्ञ-इन्द्र को बहिष्कृत करना, इन्द्र को मानसिक दण्ड देकर उसे जय कर लेना, अश्वमेध-राष्ट्रजयी होना, समस्त भूखण्डों को अधिकार में करना,

---

५. ब्रजेश के. वर्मन, विश्वामित्र, पृ. २१३

६. शान्तिकुमार नानूराम व्यास, रामायणकालीन समाज।

७. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, पृ. २९

८. स्नेह ठाकुर, लोकविनायक राम, पृ. ५६

९. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, पृ. ३४

१०. वही, पृ. २७०

११. वीरेन्द्र सारंग, वज्रांगी, पृ. ७६-७७

१२. मुदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, पृ. ३७

नरमेध यज्ञ-मनुष्यों पर विजय प्राप्त करना, जन-जन के हृदय को जीतना, ब्रह्मयज्ञ- सन्धि बेला की साधना, ध्यान। पितृयज्ञ में पिता के नाम से एक पक्ष नामांकित करना, भूतयज्ञ-बलि देना, नृयज्ञ-अतिथि का सत्कार इत्यादि[१३]।

विवेचित युग की यज्ञ-विधि के सन्दर्भ में कहा गया है कि इनका संचालन चार ऋत्विजों/पुरोहितों के अधीन होता था-होता, उद्‌गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। इनमें 'होता' यज्ञकुण्ड में अग्नि का आधान कर वेदमन्त्रों द्वारा देवताओं का आवाहन करता, उद्‌गाता आहुति के साथ साम-मन्त्रों का गान करता, अध्वर्यु कर्मकाण्ड की विधियों का समुचित रूप से अनुष्ठान करता तथा ब्रह्मा यज्ञ की सब विधियों का निरीक्षण करता और यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करता था[१४]। यज्ञ का अर्थ समिधा का हवन नहीं वरन् एक वेदी पर बैठकर चिन्तन करना था[१५]। गृहस्थ के लिए यज्ञ-दीक्षा में पत्नी का सहयोग अनिवार्य[१६] और यज्ञ को सभी पापों से मुक्ति का साधन माना जाता था। यह बात विभिन्न प्रकार के पापों के लिए अलग-अलग यज्ञों के प्रावधान से भी सिद्ध होती है। युद्धजनित पाप और विशेषकर ब्रह्महत्या से मुक्ति के लिए अगस्त्य ऋषि राम को अश्वमेध-यज्ञ करने की प्रेरणा देते हैं[१७]।

रामायणकालीन युग में कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें तपस्वियों ने यज्ञानि में स्वयं को आहूति-रूप में होम कर दिया। शबरी के गुरु मतंग ने गायत्री-मंत्र के जप से विशुद्ध हुए अपने देह-रूपी पिंजर को मंत्रोच्चारणपूर्वक अग्नि में होम कर दिया था। शबरी ने राम की आज्ञा लेकर स्वयं को योगाग्नि से भस्म कर परमधाम को प्रस्थान किया[१८]। इसके अतिरिक्त यज्ञों में पशुबलि दिए जाने के अनेक प्रमाण भी आलोच्य उपन्यासों में मिलते हैं। अश्वमेध-यज्ञ की समस्त क्रियाएं यज्ञीय अश्व की बलि पर केन्द्रित होती थीं[१९]। विवेच्य युग में यज्ञों द्वारा अनेक सिद्धियां भी प्राप्त की जाती थीं। मेघनाद ने ब्रह्मा को प्रसन्न कर ब्रह्मास्त्र प्राप्त करने के साथ यह वरदान भी प्राप्त किया था कि केवल वही व्यक्ति उसका वध कर सकता है जिसने बारह वर्ष तक लगातार निद्रा और सामान्य आहार को त्याग कर कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया हो[२०]। ब्रह्मा की तपस्या कर रावण ने यह सिद्धि प्राप्त की थी कि उसकी नाभि में स्थित अमृतकोष को नष्ट करके ही उसे मारा जा सकता है[२१]। अत: कहा जा सकता है कि तत्कालीन धर्म में चाहे वे आर्य हों या अनार्य, उन का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

महाभारत काल तक आते-आते वैदिक धर्म का प्रभाव कुछ कम हो गया था। युधिष्ठिर द्वारा संकलित 'राजसूय यज्ञ' तथा महाभारत के युद्ध के बाद चक्रवर्ती सम्राट् बनने के लिए 'अश्वमेध यज्ञ[२२]' का आयोजन किया गया, जिसका समर्थन वेदव्यास और द्वारकाधीश ने भी किया। दुर्योधन द्वारा 'वैष्णवयज्ञ' निर्विघ्न सम्पन्न होने पर धृतराष्ट्र यज्ञ की पूर्णता पर विचार करते हैं। 'यज्ञ तीन कर्मों की अभिव्यक्ति है- देवपूजा, संगतिकरण और

१३. वीरेन्द्र सारंग, वज्रांगी, पृ. १२६
१४. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग, पृ. २८१
१५. वीरेन्द्र सारंग, वज्रांगी, पृ. १२६
१६. स्नेह ठाकुर, लोकविनायकराम, पृ. ३८५
१७. वही, पृ. ३९०
१८. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, पृ. १८२
१९. शांतिकुमार नानूराम व्यास, रामायणकालीन समाज, पृ. २६२
२०. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, पृ. २१२
२१. वही, पृ. ३०१
२२. सीतेश आलोक, महागाथा, पृ. ६१०

दान। 'देवपूजा' यज्ञकर्ता में पूतभाव का आधान करती है। इससे उसका नैतिक स्तर ऊँचा उठता है। 'संगतिकरण' के माध्यम से प्रजा यज्ञकर्ता अर्थात् राजा के निकट पहुंचती है। 'दान' एक उदात्त भावना है। इसके माध्यम से एक स्थान पर संचित संपत्ति का प्रजा में वितरण होता है[२३]। अत: महाभारत काल में यज्ञों का आयोजन होता था, परन्तु इसके स्वरूप और अर्थ में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लग गया था। राजसूय, अश्वमेध जैसे यज्ञों में श्रद्धास्पद धार्मिक क्रिया गौण होने लगी थी तथा राजनीतिक सर्वोच्चता या अर्थ प्राप्ति ही इनका मुख्य ध्येय बन गया था[२४]। इसके अतिरिक्त इस काल तक आते-आते यज्ञ अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों तथा सीमाओं में बंधकर संकुचित अर्थ के द्योतक हो गए थे। कृष्ण ने गीता के माध्यम से यज्ञ को एक विस्तृत अर्थ दिया है। उन्होंने नि:स्वार्थ बुद्धि से किए गए, परमात्मा की ओर ले जाने वाले समस्त कर्मों को यज्ञ कहा है[२५]।

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म-संस्थाओं तथा धर्म-मूल्यों को मजहब या पन्थ के समानार्थी माना जाना गलत है। वस्तुत: धर्म एक आचार-संहिता है, जो व्यक्ति के रूप में तथा समाज के सदस्य के रूप में उसके जीवन का मार्ग निर्धारित करने के लिए बनायी गयी है। धर्म एक सिद्धान्त-समूह है, जिस पर चलकर मनुष्य धीरे-धीरे अपना विकास कर सकता है और अन्तत: मानव-जीवन के इच्छित लक्ष्य पर पहुँच सकता है।

-शोधकर्त्री, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)।

२३. सुधीर निगम, मैं धृतराष्ट्र, पृ. २४१ २४. भगवतीशरण मिश्र, मैं भीष्म बोल रहा हूँ, पृ. १५१ २५. गीता, ४/३२

आओ आज मनायें होली

–डॉ. केवलकृष्ण पाठक

सद्भाव की पिचकारी में पुष्प-प्राग-मकरंद डालकर
हो जाये प्रगाढ़ मित्रता, मधुर प्रेममय रंग डाल कर
प्रेम तरंग में सराबोर हो, लाल गुलाल कमल सा कर दूँ
गले मिलें अनुरागयुक्त हो, मोद प्रमोद की झोलियाँ भर दूँ
जीवन के संयोगपूर्ण क्षण, हंसी, खुशी भरपूर ठिठोली
भेदभाव तनाव भूल कर, आओ आज मनाएं होली

- संपादक, रवींद्र ज्योति मासिक, ३४३/१९, आनंद निवास, गीता कालोनी, जींद १२६१०२ (हरियाणा) मोबा. ९४१६३८९४८१

संस्थान-समाचार

दान –

डॉ. अशोक सूद ३०००/-
कोतवाली बाजार, होशियारपुर।

श्रीमती बिन्दू सूद ११००/-
सुपुत्री स्व. श्री मनमोहन सूद,
१०३४, बहादुरपुर गेट,
होशियारपुर।

श्री धर्मपाल वासुदेव ५००/-
६ कूल रोड़, जालन्धर।

श्री विजय कुमार शर्मा ४०,०००/-
५२, पारसन रोड़
एस.एल. ३,७ जीयू,
सलोह, इंगलैंड।

श्री वी .एम. भल्ला ११,०००/-
मकान ३३६७, २७-डी,
चण्डीगढ़।

शीला हरि चेरिटेबल ट्रस्ट ७०००/-
मकान ४९०, सैक्टर-१४,
फरीदाबाद (हरियाणा)।

प्रिंसीपल, डी.ए.वी. कॉलेज ऑफ ऐजुकेशन २१००/-
अबोहर।

मै. रवि प्रकाश आनन्द एंड कम्पनी १०००/-
आनन्द भवन, पलटन बाजार,
गोहाटी।

गुप्त दान (रसीद सं: १२९७) २०००/-
तारीख २-२-२०१८।

श्री राम भज मदान ५००/-
१२६, राजा गार्डन, नई दिल्ली।

मै. श्रेयंस इंडस्ट्रीज लि० ५०००/-
अहमदगढ़, संगरूर।

श्री वी.आर. अग्निहोत्री ११००/-
६६ ईस्टइन्ड इन्कलेव, दिल्ली।

श्री अरविन्द गुप्ता ११००/-
२६३, सिविल लाईन, धर्मशाला।

श्री सुरेन्द्र मोहन सोनी ५००/-
सोनी कॉटिज, निकट
संत फरीद स्कूल, होशियारपुर।

आर्यसमाज ११००/-
सिविल लाईन्ज़, धर्मशाला।

श्री राम भज दत्त बौग्यू फेबरिक्स १०००/-
पो. आफिस २३, सामने
वी.वी.एम.वी., पानीपत।

श्री अरविन्द कुमार मेहता ११००/-
आर्य भवन ट्रस्ट, २९/३,
विभव नगर, आगरा (यू.पी.)।

मेजर ज. ओ. पी. परमार (रिटा.) ५१००/-
नई कालोनी, पुराना ऊना अड्डा,
होशियारपुर।

छात्रवृत्ति हेतु दान

श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा ५००/-
मंगल भवन, सिविल लाईन्ज,
होशियारपुर।

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। फरवरी 2018 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

शोक-समाचार

श्रीमती सुभद्रा अम्मा (धर्मपत्नी प्रो. एस. भास्करन नायर, भूतपूर्व संचालक वी.वी.आर. आई., साधु आश्रम, होशियारपुर) का देहान्त दिनांक ५-२-१८ को बम्बई में हो गया। आप बहुत ही शान्त-प्रकृति, मिलनसार और सरल स्वभाव की महिला थीं। अपने परिचितों में उनका बड़ा सम्मान था। उनके निधन से परिवार को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि दी गई और प्रभु से प्रार्थना की गई कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा संबंधित परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति दे।

विविध-समाचार

आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति के पुनः प्रधान निर्वाचित

डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति के वार्षिक चुनाव इस वर्ष के प्रथम रविवार (७ जनवरी, २०१८) को संपन्न हुए। आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी को सर्वसम्मति से प्रबंधक समिति का पुनः प्रधान निर्वाचित किया गया।

प्रधान जी के अतिरिक्त, महासचिव, उपप्रधान, सचिव और कोषाध्यक्ष के पदों के लिए भी चुनाव हुआ जिसमें श्री आर. एस. शर्मा को महामंत्री, डॉ. एन. के. ओबरॉय को उप-प्रधान, श्री रविन्द्र कुमार को सचिव और श्री महेश चोपड़ा को कोषाध्यक्ष चुना गया।

प्रधान जी ने अपने आध्यात्मिक उद्बोधन में विचार की शक्ति पर विशद चर्चा की और समस्त सभासदों को नव-वर्ष की शुभकामनाएँ देते हुए प्रभु से प्रार्थना की कि यह वर्ष हम सब के लिए सुखदायी हो और हमारे विचार सकारात्मक और मंगलमय बने रहें।

संस्थान की कार्यकारिणी तथा सभी कर्मिष्ठों की ओर से प्रधान जी को बहुत-बहुत वधाई।

छात्रावृत्ति- पंडित दुर्गादास एवं श्रीमती देवकी देवी एण्डोमैंट फण्ड-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा वर्ष २०१७-१८ में संस्थान के पंजाब विश्वविद्यालय पटल में चल रही कक्षा एम.ए. (संस्कृत) **I,II,** के निम्नलिखित योग्य विद्यार्थियों को '**पंडित दुर्गादास एवं श्रीमती देवकी देवी एण्डोमेंट फण्ड**' से छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इस अवसर पर स्व. पंडित दुर्गादास जी के सुपुत्र वीरेन्द्र कुमार शर्मा तथा पौत्र मधुकर ऐरी उपस्थित रहे।

१.	श्री मुकेश शर्मा	(एम.ए.-I)	३५००/-
२.	सुश्री ममता कुमारी	एम.ए.-I	३५००/-
३.	श्री अच्युतानन्द मिश्र	एम.ए.-I	३५००/-
४.	श्री चण्डी प्रसाद गैरोला	एम.ए.-I	३५००/-
५.	सुश्री दीक्षा जैन	एम.ए.-II	३५००/-
६.	श्री प्रदीपराय	एम.ए.-II	३५००/-

प्रपत्र-४

१.	प्रकाशन का स्थान	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर।
२.	मुद्रण स्थान	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रैस, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
३.	प्रकाशन की अवधि	....	मासिक।
४.	मुद्रक का नाम	....	प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
	राष्ट्रीयता	....	भारतीय
	पता	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
५.	प्रकाशक का नाम	....	प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
	राष्ट्रीयता	....	भारतीय
	पता	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
६.	सम्पादक का नाम	....	प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
	राष्ट्रीयता	....	भारतीय
	पता	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु-आश्रम, होश्यारपुर।
७.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो इस समाचार-पत्र के मालिक या सांझेदार हैं या इसकी सारी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हैं।	....	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान-सभा (वी. वी. आर. आई. सोसाइटी), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

मैं, प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह०
इन्द्रदत्त उनियाल

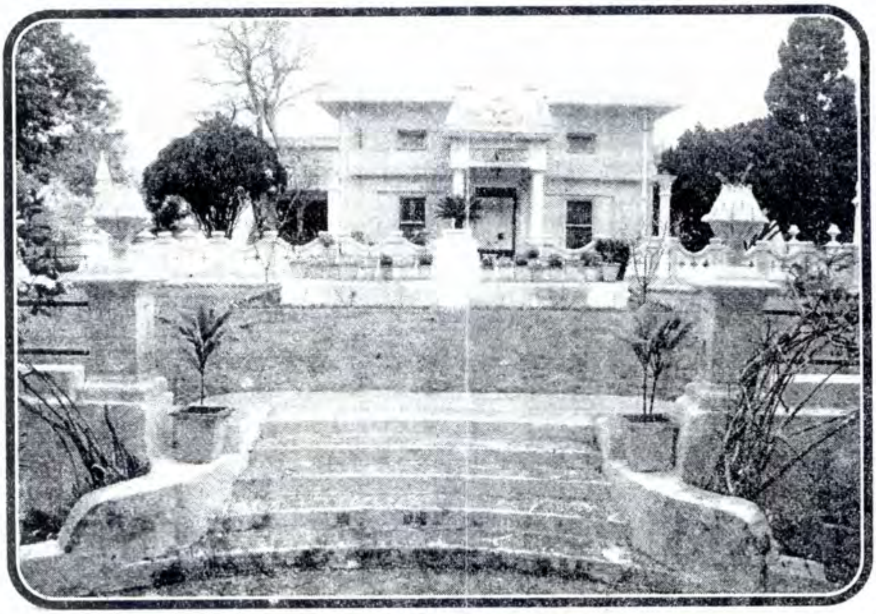

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०२-२०१८ को प्रकाशित।